रौशनी

हिन्दी

1967

ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी
जम्मू-कश्मीर, जम्मू

शीराज़ा

वर्ष : ३ अंक : २

संचालक
नीलाम्बरदेव शर्मा
(सचिव)

सम्पादक
नरेन्द्र खजूरिया

ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी, जम्मू-कश्मीर, जम्मू

वार्षिक : चार रुपये | प्रति अंक : दो रुपये

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार का पता :
नरेन्द्र खजूरिया
सम्पादक शीराज़ा (हिन्दी)
ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी जम्मू व कश्मीर
एक्सचेंज रोड, जम्मू
फोन : ५०४०

सैक्रेटरी द्वारा, ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी, जम्मू व कश्मीर
के लिए प्रकाशित तथा योगेश प्रेस, जालन्धर में मुद्रित।

१९६७ [दो]

शीराज़ा

लेख

**

कश्मीरी कविता : भारतीय साहित्य परम्परा का सन्दर्भ	१	रतनलाल शांत
स्वाधीनता के बाद हिन्दी साहित्य की प्रमुख प्रवृतियां	१२	विष्णुकांत शास्त्र
डोगरी और पुञ्छी का तुलनात्मक अध्ययन	४३	सत्यपाल शास्त्री
परमानन्द की हिन्दी कविता	६७	राजकुमारी कौल
ल ्दाख की गुम्पाएं	७४	सूरज सराफ
कश्मीरी संगीत	७७	पृथ्वीनाथ रैणा

काव्य-धारा

**

कागज के आंसू	२५	सुभाष भारद्भाज
एक चीखता हुआ बिम्ब	४०	शशि शेखर
गीत	७२	मोहन निराश
दो लघु कविताएं	८५	सुतीक्षणकुमार 'आनन्दम्'

कथा साहित्य

**

पापी पुजारियों की सन्तान	२८	अली मोहम्मद लोन

स्थायी स्तम्भ

**

बिम्ब-प्रतिबिम्ब

कश्मीरी कविता	८६	नीलकंठ शर्मा
हिन्दी अनुवाद	८७	पृथ्वीनाथ मधुप
डोगरी कविता	९०	यश शर्मा
हिन्दी अनुवाद	९१	विजय सुमन
अपना अपना सच	९२	हरिकृष्ण कौल
पत्र मंच		

पत्र-मंच

***नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली*

इस अर्द्ध वार्षिक पत्रिका के माध्यम से कश्मीर राज्य की सांस्कृतिक झांकी आसानी से देखी जा सकती है।

आलोच्य अप्रैल मा ा की पत्रिका में श्री बंसीलाल गुप्त का लेख—"जम्मू-कश्मीर के लोग विविधता और सद्भाव का अनूठा संगम" वहां के लोगों के लोक-जीवन का अद्भुत चित्रण है। इसी प्रकार श्री जगदीशचन्द्र साठे के लेख से डोगरा जन जीवन का परिचय मिलता है।

इस पत्रिका के द्वारा शेष भारत की सांस्कृतिक धारा से जम्मू-कश्मीर के सांस्कृतिक जीवन को जोड़ा जा सकता है।

***बहुरंगी (मासिक), नई दिल्ली*

प्रथम बार किसी पत्रिका के माध्यम से किसी राज्य की सांस्कृतिक झांकी देखने का अवसर मिला। निश्चय ही जम्मू-कश्मीर अकादमी की साहित्यिक तथा सांस्कृतिक उपलब्धियां अन्य राज्यों के अनुकरण के लिए प्रेरणा स्त्रोत हैं।

इस छोटी सी पत्रिका (शीराज़ा-हिन्दी) में हिन्दी व उर्दू साहित्य के अलावा कश्मीरी, डोगरी व लद्दाखी साहित्य के जो दर्शन हुए वह अन्य किसी स्थान पर अप्राप्य हैं।

आलोच्य अप्रैल १९६७ मास की पत्रिका में श्री बंसीलाल गुप्त का लेख, "जम्मू-कश्मीर के लोग विविधता और सद्भाव का अनूठा संगम" वहां के लोक जीवन का उद्भुत प्रभावशाली चित्रण है। इसी प्रकार श्री जगदीश चन्द्र साठे के लेख, "डोगरा-पहाड़ी क्षेत्र में शिक्षा और ज्ञान की प्राचीन परम्परा" के बारे में अनायास ही और अधिक जानने की जिज्ञासा बलवती हो जाती है। "डोगरी लोकोक्तियों में जन-जीवन" के बारे में श्री तारा स्मैलपुरी ने हिन्दी लेखकों का ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा है कि देश में प्रचलित आर्य भाषाओं की तरह डुग्गर प्रदेश की भाषा डोगरी में भी जन जीवन के हर पहलू से सम्बन्ध रखने वाली बड़ी मार्मिक, तीव्र, सुन्दर और रोचकतापूर्ण लोकोक्तियों की भरमार है। डा० हरिश्चन्द्र वर्मा का शास्त्रीय पाण्डित्य "कालिदास की सौन्दर्य भावना" लेख में मिलता है।

इस पत्रिका के द्वारा यह सहज ही जाना जा सकता है कि जम्मू व कश्मीर राज्य साहित्य, कला, संस्कृति और दर्शन के क्षेत्र में भी अग्रणी रहा है और दूर दूर के विद्वानों तथा कला-पारखियों को आकर्षित करता रहा है। बहुत कम लोग जानते हैं कि इस राज्य में अनेक जातियां बसती हैं, जो अपनी रंगारंग संस्कृति और परम्पराओं से राज्य के जन-जीवन को समृद्ध बनाये हुए हैं।

आवरण व मुद्रण साधारण है जो पाठक को अनायास ही आकर्षित नहीं करता।

कुशल सम्पादन के लिए सम्पादक बधाई के पात्र हैं।

***नीहारिका (मासिक), आगरा*

जम्मू व कश्मीर में कश्मीरी, डोगरी, बोधी, भद्रवाही आदि जन भाषाओं के अतिरिक्त उर्दू और अंग्रेजी प्रशासन के रूप में मान्य हैं। यह सौभाग्यपूर्ण है कि इन भाषाओं के साथ साथ हिन्दी भी इस राज्य में सारे देश की भाषा के रूप में उचित स्थान प्राप्त कर चुकी है।

आलोच्य संकलन में काव्यधारा, कथा-साहित्य, यात्रा-संस्मरण और लेखों का चयन उच्चकोटि का है, राष्ट्र भाषा के विकास की अभिव्यक्ति के रूप में यह एक सराहनीय प्रयास है। साज सज्जा तथा मुद्रण स्तर का है।

***डा० हरिश्चन्द्र वर्मा, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र*

.....पत्रिका में उच्च स्तरीय, विविधतापूर्ण और उपयोगी सामग्री है। 'शीराज़ा' जम्मू-कश्मीर जैसे अहिन्दी प्रदेश से हिन्दी की शक्ति का उद्घोष करती प्रतीत होती है। राष्ट्र भाषा के प्रचार प्रसार में 'शीराज़ा' का महत्वपूर्ण योगदान

रहेगा, यह सुनिश्चित है। ऐसे उत्कृष्ट प्रकाशन के लिए हार्दिक बधाइयां स्वीकार कीजिए।

***श्री मधुर शास्त्री, नई दिल्ली*

सुलझा और सूझ-बूझ वाला सम्पादन प्रत्येक पृष्ठ पर अंकित है। पढ़ कर सन्तोष मिलता है।.....सब से बड़ी बात यह है कि 'शीराज़ा' में कश्मीरी और डोगरी कथाएं पढ़ने को मिलती हैं, जिनमें आज का यथार्थ है। भावनाओं का सहज स्पर्श रोचक है। लेखों में सर्वश्री रामनाथ शास्त्री, रत्नलाल 'शांत' तथा बलजिन्नाथ पंडित के लेख सराहनीय हैं।

***श्री मान सिंह, रणवीरसिंहपुरा*

'शीराज़ा' का अप्रैल अंक उपादेय लगा। सर्वश्री शेखर, सुभाष भारद्भाज, चन्द्रकान्त जोशी की कविताएं तथा डा० वर्मा का लेख महत्वपूर्ण और विचारोत्तेजक हैं।.....श्री त्रिलोक दीप का लेख, "आधुनिक पंजाबी कहानी" निश्चय ही एक कमजोर रचना है। दीपजी ने कितने ही पंजाबी कहानीकारों का ज़िकर ही नहीं किया।

***कृष्ण चन्द, कलकत्ता*

'शीराज़ा' का नया अंक सामने है। श्री तारा स्मैलपुरी का लेख 'डोगरी लोकोक्तियों में जन-जीवन' न केवल महत्वपूर्ण लगा बल्कि उपयोगी भी। अन्य सामग्री भी रुचिकर है। .....हिन्दी जगत् में आपका यह एक मौलिक प्रयोग है।

प्रस्तुत अंक

प्रस्तुत अंक में श्री सत्यपाल शास्त्री का महत्वपूर्ण लेख, "डोगरी और पुञ्छी का तुलनात्मक अध्ययन' विशेष रूप से 'शीराज़ा' के लिए लिखा गया है।

अन्य दो लेख - "कश्मीरी कविता भारतीय साहित्य परम्परा का संदर्भ" (प्रो० रत्नलाल शांत) तथा "स्वाधीनता के बाद हिन्दी साहित्य की प्रमुख प्रवृतियां" (श्री विष्णु कान्त शास्त्री) केवल महत्वपूर्ण और विचारोत्तेजक ही नहीं आलोचना की एक नई दृष्टि भी प्रस्तुत करते हैं।

राज्य के सुप्रसिद्ध पत्रकार तथा कला-पारखी, श्री सूरज सराफ का देश-दर्शन सम्बन्धी लेख, "लद्दाख की गुम्पाएं," श्रीमती राज कुमारी कौल का निबंध "परमानन्द की हिन्दी कविता" तथा श्री पृथ्वीनाथ रैणा का लेख, 'कश्मीरी संगीत' हम राज्य की सांस्कृतिक और साहित्यिक जानकारी देने के विचार से प्रस्तुत कर रहे हैं।

'काव्य धारा' में 'शीराज़ा' के पाठकों के सुपरिचित कवि, श्री शशिशेखर, श्री सुभाष भारद्भाज तथा श्री मोहन निराश की रचनाएं हैं।

श्री अली मोहम्मद लोन कश्मीरी के सुप्रसिद्ध कहानीकार और आलोचक हैं। 'पापी पुजारियों की संतान' इनकी बहु प्रशंसित कहानियों में से एक है।

आपने दो स्तम्भों, 'अपना अपना सच' तथा 'बिम्ब-प्रतिबिम्ब' के अन्तर्गत इस बार श्री हरिकृष्ण कौल अपना सच प्रगट कर रहे हैं। श्री नीलकण्ठ शर्मा तथा श्री यश शर्मा कश्मीरी तथा डोगरी कविताएं प्रस्तुत कर रहे हैं।

अंत में हम उन सभी भाषाविदों तथा विद्वानों का आभार मानते हैं जिनका सहयोग हमारे लिए प्रेरणादायक तथा उत्साहवर्धक है।

संवेदना

पिछले दिनों आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी तथा श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के निधन से हिन्दी को अपार क्षति हुई है।

आचार्य बाजपेयी तथा श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी दोनों उच्चकोटि के आलोचक थे।

'शीराज़ा' परिवार की ओर से दोनों आलोचकों के प्रति श्रद्धांजलियां।

—नरेन्द्र खजूरिया

कश्मीरी कविता : भारतीय साहित्य परम्परा का संदर्भ

रतनलाल शान्त

हमारा जीवन विविध है। इन सभी विविध पक्षों से सम्बन्धित परम्परा का एक निर्विवाद लक्षण प्रस्तुत करना कठिन है, लेकिन इतना परम्परा के बारे में अवश्य सत्य है कि रूढ़ियां इस के अंग के रूप में नहीं रहतीं। एक विचार प्रणाली जो दो तीन पीढ़ियों के विश्वास और विवेक की परीक्षा से गुजरती हुई हम तक आती है, हमारे लिए परम्परा बन जाती है। इस विचार प्रणाली का उदभव हमारे सामाजिक धार्मिक और राजनीतिक वातावरण में एक विशेष समय पर होता है। स्वत: ही इसे उस समय के साहित्य द्वारा अपनाया जाता है। किसी पुरानी परम्परा से चिपटे रहना ओर नवीनताओं के प्रति विद्रोही बनना एक भयानक प्रवृत्ति होती है लेकिन यह प्रवृत्ति कभी कभी अनिवार्य अंग के रूप में हमारे जीवन का एक भाग बन जाती हैं, क्योंकि पुरानी परम्परा को शायद ही जानबूझ कर अपनाए रखा जाता है। जब भारतीय परम्परा पर दृष्टिपात किया जाये तो अमनन यह अभियोग लगाया जाता है कि दृष्टिपात करने वाले का भूतकाल के प्रति आकर्षण भावुकता की हद तक पहुंच जाता है। लेकिन यह सदा सत्य नहीं है। एक विकसित साहित्य परम्परा के कारण मनुष्य अवश्य महत्वाकांक्षी बन सकता है। किसी भी कवि का मूल्यांकन करने के लिए उसके और पूर्व-मृत कवियों के सम्बन्धों को जांचना आवश्यक होता है। टी० एस० ईलियट अपने "संस्कृति पर कुछ नोट्स" में लिखते हैं—'कविता में भूतकाल से अनपेक्ष और सम्पूर्ण मौलिकता नाम की कोई चीज़ नहीं होती। जब भी एक 'वर्जिल' एक 'दांते' या एक 'शेक्सपियर' पैदा होते हैं, तो युरोपी इतिहास का सारा भविष्य बदल जाता है।"

भारतवर्ष हिमालय और हिंदमहासागर बीच की फैली हुई भूमि है जिस में

चौड़े हरे भरे मैदान हैं, गंगा, यमुना, पंजाब की पांच नदियां कई अन्य शाखाओं के साथ बहती हैं। सब से प्राचीन प्राप्त साहित्यिक कृति 'ऋग्वेद' और शेष तीन वेद भी, बाद की साहित्य रचना के लिए प्रेरक रहे हैं। इसी प्रकार 'रामायण' और 'महाभारत' ये दो महाकाव्य अब भी इसी प्रकार के प्रेरणा स्रोत हैं। संस्कृत साहित्य का आरम्भ दसवीं शती ईसा पूर्व से माना जाना चाहिए यद्यपि समय के साथ २ इसका स्वभाव बदलता गया। तब से हम तक एक अछिन्न साहित्य परम्परा चली आई है, जिसकी समता संसार भर में केवल चीनी, यहूदी और यूनानी साहित्य परम्परा ही कर सकती है। समस्त यूरोपी साहित्य के लिए (विशेष कर शास्त्रीय classical) बाइबल और दूसरे सन्तों के आख्यान भी इसी प्रकार की प्रेरणा रहे हैं। 'रामचन्द्र' की कहानी, जोकि 'वाल्मीकी रामायण' में मिलती है, बाद में सैंकड़ों कवियों ने मूल या अनुवाद से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपना ली। इसी प्रकार 'भागवत पुराण' में वर्णित 'कृष्णचन्द्र' की कहानी से एक अलग ही परम्परा स्थापित हुई। 'महाभारत' में भगवान् कृष्ण के जीवन का दार्शनिक पक्ष प्रबल हो उठा था जो भागवत में सरलीकृत हो गया और लोकप्रिय स्वच्छन्द वातावरण में रंग गया। इन ही दो आधारशिलाओं पर भारतीय साहित्यों के भवन निर्मित हुए। इस परम्परा को देखते हुए लगता है कि मध्ययुगीन भारत में इस ने एक दूसरा ही रुख अपना लिया। इसका कारण वे विदेशी आक्रमण थे जो मध्ययुग में भारत ने काफी देखे। इसी समय हिन्दी की खड़ी बोली और उर्दू शैली ने जन्म लिया क्योंकि भारतीय साहित्य शैली मध्य एशियाई और फारसी शैली के सम्पर्क में आई। यह प्रभाव करीब-करीब हर भारतीय साहित्य में देखा जा सकता है। बंगला में 'लक्ष्मीचन्द्र' के 'वीरगीत' 'राजकुमार' बिहुल और उसकी पत्नी और 'सर्प देवी मानसा' के गीत प्रसिद्ध हैं। उड़िया में 'राजा पुरुषोत्तमदेव और रानी पद्मावती' की कथा प्रसिद्ध है। हिन्दी में ऐसी कई कहानियां कविता का अभिप्राय बन गईं। चित्तौड़ की 'पद्मिनी' 'आल्ह और ऊदल' के प्रेम गीत क्रमशः अवधी और राजस्थानी में प्रसिद्ध हुए। इसी परिवर्तन-युग में पंजाबी में 'भर्तृहरि' की कहानियां और मराठी में 'शिवाजी' के आख्यान प्रसिद्ध होने लगे। इसी समय उर्दू काव्य में और ऐसी दूसरी कविताओं में जहां कवि अधिकतर मुस्लमान होते, इस्लामी दन्तकथाएं और देवकथाएं प्रेरणास्रोत बनने लगीं। भारतीय काव्य के मुस्लमान कवियों के लिए भी बहुत देर तक 'हजरत मुहम्मद साहब' का जीवन, अरब-संसार के जन-नायकों और अलिफ लैला की कथाएं प्रेरणा रहीं। सूफीमत भारत में आया और यहां अपनाया गया।

कश्मीरी काव्य के बारे में ध्यान में रखने की सर्वप्रथम यह बात है कि इसे पूर्णतः भारतीय मानना होगा। मध्यएशिया से आने वाले आर्यों में से एक दल कश्मीर की घाटी में बस गया और भारत के शेष आर्यों से भूगौलिक दृष्टि से कट गया। स्थानीय

वातावरण और इस अलगाव के कारण यहां के जन जीवन, भाषा, साहित्य पर एक अलग छाप पड़ी। यही कारण है कि संस्कृत भाषा साहित्य का प्रभाव कश्मीरी पर अब तक बना है। खैर, इस प्रश्न से हमारा सीधा सम्बन्ध नहीं कि क्या संस्कृत यहां के निवासियों की पहली भाषा थी। हमारा सम्बन्ध उस सब से पहले के प्राप्त कश्मीरी हस्तलेख से है जिसकी भाषा संस्कृत के इतने निकट है कि उसके कुछ अंश ही संस्कृत से अपभ्रष्ट या संस्कृत के उद्भव या कश्मीरी के प्राचीनतम स्वरूप के तौर पर मान्य हो सकते हैं। यह कृति 'महानय प्रकाश' है। 'महानय प्रकाश' के बाद कश्मीरी अपभ्रंश के किसी और मरहले से गुजरी होगी और तब जाकर कहीं लल्लेश्वरी की सुस्पष्ट और पूर्ण कश्मीरी प्रचलित हुई होगी। १०वीं और ११वीं शताब्दी में कश्मीर में कई संस्कृत विद्वान वैयाकरण अलंकारिक उत्पन्न हुए जिनका भारतीय साहित्य को योग महत्वपूर्ण है। इससे सहजता से समझा जा सकता है कि कश्मीर उस समय शेष भारत से ठीक जुड़ा था। १३वीं शती में महानय प्रकाश के लिखे जाने के समय शेषभारत में या तो वेदकालीन धर्म, सभ्यता और समाज का पुनरुत्थान हो रहा था या तंत्रसाधना जोरों पर थी। समसमायिक लेखन पर इन दोनों का प्रभाव गहरा था। नाथपन्थ ने अधिकांश भारतीय साहित्य को प्रभावित किया था। 'शितिकण्ठ' के 'महानय प्रकाश' के अतिरिक्त और भारतीय साहित्य भी तन्त्रविश्वासों से प्रभावित थे। मराठी साहित्य का आरम्भ इसी विचारधारा से हुआ। 'मुकुन्दराम' का 'विवेकसिन्धु' (१२ शती) मराठी में, 'मंजु-रास' गुजराती में, ''बुद्ध-गान-ओ-दोहा' असमी में, बंगला में 'चर्यापद' आदि के ऐसे उदाहरण लिए जा सकते हैं।

कश्मीरी काव्य के इतिहास में एक सौ वर्ष का शून्य है। जब किसी भी प्रकार की काव्य रचना के दर्शन नहीं होते। 'महानय प्रकाश' और 'लल्लेश्वरी के बीच के इस शून्य को तभी पाटा जा सकता है जब कोई कृति (इस समय की) मिल जाय। १४वीं शती में लल्लेश्वरी' के काव्य में संस्कृत काव्य की परम्पराएं और संस्कृत शब्दा-वली के प्रचुर प्रयोग मिलते हैं। अन्तर्वृत्तियों और भावनाओं के ऐसे सूक्ष्म निदर्शन को देख कर ही कई आलोचकों का यह मत उचित जचता है कि इस प्रकार की अभिव्यक्ति की परिपक्वता किसी काव्यपरम्परा का आरम्भ नहीं हो सकती थी (क्योंकि सामान्यतया हम लल्ला को कश्मीरी काव्य की आदिकवयित्री मानते हैं) वे अपना आध्यात्मिक अनुभव इस प्रकार वर्णन करती हैं :—

मेरे ज्ञान का दीप प्रकाशित हो उठा
और मेरी निरावृत्त आत्मा दमक उठी।

आदिकवयित्री के प्रादुर्भाव के समय भारत में सध्ययुगीन प्रभाव क्रिया शील

दिखाई देते हैं। हिन्दी में १४वीं शती के साथ ही भक्ति आंदोलन का आरम्भ होता है। यह आन्दोलन दक्षिण में ११वीं शती में ही जन्मा था और धीरे-धीरे उत्तर में कदम जमा रहा था। बंगाल ने यह प्रभाव सर्वप्रथम ग्रहण किया और संस्कृत में 'गीत गोविन्द' लिखा गया, तदुपरांत मैथिली में 'विद्यापति' ने उसका अनुसरण किया। इसी विचार-धारा के समसामयिक संतों में कई सगुणवादी और कई निर्गुणवादी रहे। इन दोनों विचार-धाराओं ने अपने काव्य के आधार-स्वरूप राम और कृष्ण को ही लिया लेकिन उनको प्रतीक के तौर पर ही अपनाया। कृष्ण राम की अपेक्षा किसी हद तक कम ही प्रतीक रहे। संत कवि कबीर ने हर कहीं अपनी निर्गुण-भक्ति का आधार 'राम' को ही बनाया। कश्मीरी कविता इस समय निर्गुण शाखा के अधिक निकट दिखाई देती है। 'लल्ला' का ध्येय भी शिवही है—शिव प्रतीक रूप में —

एक ही पत्थर नींव और सड़क में प्रयुक्त होता है
और वही पत्थर पवित्र मन्दिर में भी रहता है

उसी से चक्की बनती है—
शिव को कहां ढूंढा जाए ?

जब सूरदास सगुण पन्थ के अनुयायी नहीं बने थे तो वे भी इसी प्रकार की कविता करते थे—

एक लोहा पूजा में राखत, एक घर बधिक परो
पारस गुण अवगुण नहीं देखत कंचन करत खरो।

तब सूर हठयोग के अवशिष्ट प्रभावों से प्रभावित थे। लेकिन कबीर ने कहीं कहीं पर मानव और ईश्वर प्रेम की सहज कसौटी पर हठयोग को कस कर उसे अनुपयुक्त प्रमाणित किया। तभी तो कबीर स्वयं को बधू और ईश्वर को बर मानते थे। 'लल्ला' के इस पद में इसी प्रकार के प्रभावों को देखा जा सकता है—

भावुक आंखों में आकांक्षा लेकर
मैं दिन रात घूम-घूम कर उसे ढूंढ रही थी
कि मैंने देखा—पण्डित तो मेरे घर में ही हैं।

इस समय की दूसरी भाषाओं और उन के साहित्य को देख कर बहुत बार एक ही कवि में विभिन्न प्रवृत्तियों और प्रभावों को अलग-अलग करके देखना कठिन हो जाता है।

लल्लेश्वरी के काव्य को देखकर लगता है कि उसके बाद की कविता बहुत समय तक आगे जाकर भारतीय साहित्य की परम्परा से अपने आप को सम्बद्ध किये रही होगी। लल्लेश्वरी का निम्न लिखित पद (वाक्) इस संदर्भ में उद्धृत किया जा सकता है—

मैं कच्चे धागे से नाव को समुद्रपार खींच रही हूं
काश ! कि मेरे प्रभु मेरी पुकार सुनते और मुझे पार लगाते
मिट्टी के कच्चे सकोरों में से रिसते पानी सी मैं जाया हो रही हूं
काश ! कि घर पहुँच जाऊं।

भारत भर में पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियां बढ़ रही थीं। कश्मीर में मुसलमान चौदहवीं शती से शासक हुए। मध्य एशिया से तैमूर द्वारा निष्कासित हो कर 'सैय्यद' कश्मीर आए और इस्लाम का प्रचार करने लगे। सूफी सिद्धांत सैय्यदों के शुद्ध इस्लामी विचारों से मिश्रत हुए। 'शेख नूरुद्दीन' के श्लोक इस के उदाहरण हैं 'इश्क' के बारे में उनका कहना था—

इश्क मां के लिए उसकी अकेली सन्तान की मृत्यु है—
प्रेमी को चैन कहां ?
इश्क सैंकड़ों भिड़ों की चुभन है—
प्रेमी सोता कैसे ?
इश्क ऐसा कपड़ा है जिस से रक्त चू रहा हो—
पहनने वाला आह भरे तो क्या ?

ऐसे ही विचार दूसरे भारतीय कवियों में भी पाये जा सकते हैं। हिन्दी में कई सूफी कवि हुए जिनमें मंझन, जायसी, कुतबन आदि प्रसिद्ध हैं। बंगाल के बहुल-गीत हिन्दुओं तथा मुसलमानों की संयुक्त रचना हैं।

'लल्लेश्वरी' के सौ वर्ष बाद तक कश्मीरी में कोई रचना नहीं हुई मिलती है। इस समय तक कश्मीरी शारदा लिपि में ही लिखी जाती रही जो ब्राह्मी की एक शाखा होने के कारण भारतीय आत्मा से संपृक्त रही। इसका स्थान बाद में फारसी ने ले लिया। इस समय राजनीतिक अनिश्चितता के कारण न ही अलग से यथेष्ट साहित्य सर्जन हुआ और न ही भारतीय साहित्य परम्परा के साथ-साथ कश्मीरी कविता विकसती रही। भारतीय काव्य परम्परा से प्रभावित कवियों को छोड़ कर दूसरे कवि फारसी से प्रभावित होने लगे। हब्बाखातून का स्वर फारसी का था। 'अरणिमाल' (प्रसिद्ध

फारसी कवि भवानीदास काचरू की पत्नी) ने विरह गीतों से कश्मीरी कविता कानन को हरित भरित कर दिया) गजल की अत्युक्ति पूर्ण वर्णन शैली ही अधिकांश कवियों के द्वारा अपनायी जाने लगी। गज़लगो कवियों का प्रिय 'पुरुष' ही रहा। यह परम्परा आज तक विद्यमान है, यद्यपि केवल एक आधुनिक कवि 'महजूर' ने ही इस मरे सम्बोधन में यथार्थ की जान फूंक दी। वे प्रिय को एक नारी के नाम से ही सम्बोधित करते हैं—

तुम फलों में स्वतन्त्र हो घूमती हो
और 'ख्वाजा-घरों' की स्त्रियां चारदीवारी में समाई रहती हैं
अरी ओ ग्रामबाले !

फारसी का यह प्रभावाधिक्य कश्मीरी कविता परम्परा को सर्वथा अलग नहीं कर सका। अरणिमाल के दो पद इस संदर्भ में उद्धृत किये जा सकते हैं—

रे प्रेमी बुलबुल ! फूलों को छान मारो
और मेरे प्रिय से मुझे मिलादो !
उसका दृष्टिबाण हिरण को भी मारता है
उसकी आंखें कितनी चंचल हैं।

इस पद में फारसी प्रभाव देखा जा सकता है। और उनके ही दूसरे पद में भारतीय परम्परा को जीवन्त रूप में देखा जा सकता है :—

मैं तुमको देखने को उत्सुक थी, तुम्हें देखने आई
तुम्हें भौंहें तने हुए पाया
और मैंने चाहा कि तुमको लोमऋषि की
आयु मिले !

यह कहना कोई अत्युक्ति नहीं कि फारसी की मधुरता और परंपरा वैशिष्ठ्य ने कश्मीरी काव्य के वर्णन तथा रचना को बहुत कुछ दिया। १९वीं शती में 'रसूलमीर' 'मकबूल शाह क्रालवार', 'परमानन्द', 'वहाब खार', 'कृष्ण राजदान' आदि कई अच्छे कवि हुए जिनसे कि काव्य सूत्र अछिन्न रहा। उसे भारतीय परम्परा से जोड़ने वाला सूत्र कभी तन जाता और उसके टूटने की नौबत भी आती और कभी वह काफी दृढ़ बना रहता। 'महमूद गामी' ने फारसी विचारधारा की परम्परा पायी थी अतः उसने कश्मीरी में भी उसे परिचित कराया। उसकी कल्पना बड़ी सूक्ष्म थी—

मैं एक पूर्ण विकसित नरगिस हूं
शरम के मारे स्नेह जतला नहीं सकती ।

रसूलमीर अपने प्रिय से संबोधित हुए कहते हैं—

तुम्हारी उलझी भौंहों की कमान
क्षण क्षण मुझको तीरों से बेंध रही है ।
मेरा हृदय छलनी सा, खिड़की का पल्ला बनता है ।

लेकिन 'हाजन' का 'वहावपरे' विश्वअवतार-स्वरूप-प्रेम के गीत गाया करता जो जातपात के द्वैत से ऊपर हैं :—

'शेख सना' राम का भजन किया करता
एक भारतीय युवती को उसने अपना प्रेम दिया
उसने मूर्ति को पूजा.....

सूफीमत, जिसका प्रभाव कश्मीरी कविता पर पहले से पड़ने लगा था, अब भी प्रबल था । फारसी प्रभाव निस्संदेह बढ़ता जा रहा था । लेकिन भारतीय विचार प्रणाली की जड़ें उखड़ नहीं गई थीं । भारतीय साहित्य परम्परा के दर्शन हमें १९वीं शती के ही दूसरे कवियों में होते हैं । वह कविता भक्ति कविता है । 'नादिम खोयहामी' 'मीर सना उल्ला', 'शम्सफकीर' प्रभति इस्लामी विचार से प्रभावित रहे । 'परमानन्द' 'कृष्ण राजदान', 'प्रकाश राम कुरिगामी, 'साहिब कौल' आदि कवियों का वर्ग भारतीय संस्कृति और साहित्य से प्रभावित रहा । 'साहिब कौल' शेष दो से पहले हुए । इन के बारे में प्रो० 'हाजिनी' अपनी 'सानि अदबच ज़ान' (हमारे साहित्य का परिचय) में लिखते हैं—

"इस समय (१६ वीं शती में) साहिब कौल की दो पुस्तकें 'कृष्णाअवतार' और 'जन्म चरित' देखने को मिलती हैं । इनकी भाषा को देखकर लगता है कि फारसी के प्रति द्वेषवश इन्होंने लल्लेश्वरी से पहले की कश्मीरी प्रयुक्त की है । इन्होंने ऐसी भाषा में नहीं लिखा जो जनता की इच्छाओं के अनुकल होती ।"

विद्वान आलोचक ने यहां साहित्यिक भाषा और जनता की भाषा को खलत-मलत किया है । यह स्पष्टतया स्वीकार किया जा सकता है कि न ही घाटी के हिन्दूवर्ग ने 'नात' साहित्य को ठीक से अपनाया है और न ही मुसलमान विभाग ने 'लीला' को । इसके अपवाद अवश्य हो सकते हैं । यह तथ्य भी उपेक्षित नहीं करना चाहिए कि घाटी

में कश्मीरी की दो बोलियां हैं—हिन्दू बोली तथा मुस्लमान बोली हैं। यह वैभिन्न्य भी फारसी के परिचय से उत्पन्न हुआ होगा। किसी ऐसे कवि की भाषा अवश्य संस्कृत गर्भित होगी जिसके काव्य की वस्तु शुद्ध धार्मिक हो और जो हिन्दू पाठकों को दृष्टि में रख कर ही कविता करे। अतः यदि प्रोफेसर महोदय को साहिब कौल की भाषा लल्लेश्वरी से पहले की सी लगी, तो उन्हें लल्लेश्वरी की भाषा भी उनके अपने समय से भी १०० वर्ष पूर्व की क्यों नहीं लगी? शायद इसलिए कि लल्लेश्वरी के समय में फारसी का प्रभाव नहीं के बराबर था या फारसी, जनजीवन में नहीं समाई थी वरना 'लल्लेश्वरी' भी फारसी का प्रयोग करके उसे 'आम फहम' बनाती। भले ही उस का उद्देश्य मारा जाता। आलोचक महोदय तो सन्तुष्ट होते। लल्लेश्वरी के इस वाक्य को ही लिया जा सकता है—

गगन चय (भूतल) चय
चय द्यन (दिन) पवन त रात
अर्ग (अर्घ) ते चंदन पोभ (पुष्प) पोज (पानी) चय
चयन सोरुय त लागिजें क्याह ?

इस प्रवृत्ति से भारतीय परम्परा के साथ यहां का सम्बन्ध-सूत्र बना रहा। 'रहीम साहब' का फारसी गर्भित और इस्लामी आख्यान पूरित काव्य भी किसी दूसरे आलोचक को विदेशी लग सकता है।

शेष कवि दो वर्गों में विभाजित हो सकते हैं—राम भक्ति और कृष्ण भक्ति वर्ग के। कृष्णजू राजदान, साहिब कौल, परमानन्द, कृष्णभक्त और प्रकाश राम रामभक्त हुए। दूसरी भारतीय भाषाओं की ही तरह कश्मीरी में भी कृष्ण के जीवन की रंगीनियों पर कविता अधिक लिखी गई। रामायण की गम्भीरता और चरित्रों की अचंचलता ने ऐसा सर्व-व्यापी प्रभाव नहीं डाला। गुजराती में 'नरसी मेहता' का कृष्ण भक्ति गान, हिन्दी में अष्टछाप कवियों की सरल कविता, उड़िया में 'सरला दास' के भक्तिगीत, बंगाली में श्रीकृष्णकीर्तन के कवि 'चण्डी दास' की कविता भी इसी समय लिखी गई। 'चैतन्य' ने एक सर्वथा नवीन प्रवृत्ति को जन्म दिया। यही देश व्यापी प्रभाव कश्मीर को भी चमत्कृत कर उठा।

'परमानन्द ने' गोपियों के कृष्ण से एक होने के समय की रास लीला का अतीव सुन्दर चित्रण किया है। सगुणवादी कवि इस विचार को अनर्गल मानता कि सांसारिक इच्छाओं और इन्द्रियों के दमन से ईश्वर प्राप्त हो सकता है। सूरदास की ही गोपियों की तरह 'कृष्ण राजदान' की गोपियां भी कृष्ण के मित्र 'उद्धव' से कहती हैं कि—

हम संसार को क्यों छोड़ें ?
हम कृष्ण की भक्ति में ही पगी रहेंगी
वही तो योग हैं, नियम हैं ।

और 'परमानन्द' की गोपियां जानती थीं कि कृष्ण के प्रति उनकी भावना तथाकथित व्रत से कहीं श्रेयस्कर है—

हमारी कोई भी बात मन्त्र से कम नहीं ।
हमारी कोई भी बात नजर, उच्च भक्ति है
हमारा खाना पीना एक सुन्दर व्रत है ।

यह योग के प्रति प्रतिक्रिया थी जो इस समय तक काफी दृढ़ हो चुकी थी। एक स्थान पर लगता है कि शायद 'परमानन्द' भोग और योग की प्रवृत्तियों को मिश्रित कर रहे हैं। एक प्रसिद्ध 'लीला' में वे 'रास' के लक्षण इस प्रकार बताते हैं—

रास वह है जहां प्रेम का प्रसार समुद्र का सा हो जाता है
रास कटु और मधुर का सन्तुलन है
हमारा नाचना ही भक्ति, योग और ज्ञान है
हमारा नृत्य जागृत अवस्था की समाधि है ।

एक और स्थान पर वह लिखते हैं—

शरीर के भवन में देखो
नृत्य हो रहा है
इसकी नौ खिड़कियां हैं
आओ री व्रत में नाचें !

यहां तक रामभक्ति का सम्बन्ध है प्रकाशराम ने अकेले ही रामकाव्य को विकसित किया है। प्रो० जियालाल कौल के शब्दों में उसने 'महमूद गामी' की फारसी मिश्रित और 'परमानन्द' की संस्कृत मिश्रित कश्मीरी के बीच सेतु का काम किया। 'रामचरित मानस' की ही तरह 'रामवतार चर्यत' (चरित्र) के आरम्भ में भी शिव और पार्वती कलियुग के पापी-दोषी मनुष्यों का वर्णन करते हैं। विषय वस्तु के भारतीय होते हुए भी काश्मीरी रामायण की शैली विशुद्ध कश्मीरी है। 'ग्रियर्सन' के अनुसार

कश्मीरी कविता में तुक के बजाय मध्यम मात्रा पर स्वराघात हुआ करता है। फारसी ने 'परमानन्द' को भी काफी प्रभावित किया—

परवाना शमअ के गिर्द घूमता है
और स्वयं को राख कर देता है।
हम कुमारियां भी तो घूम घूम कर नाच रही हैं।

यह राम लीला का गीत है। एक और स्थान पर वे लिखते हैं—

बुलबुल गाओ, बहार आ गई है
जरा वसन्त का आना तो मनाएं
ओ री पोशनूल, अपनी आजादी का सन्देश सबको सुनाओ
नरगिस प्याला लिए तुम्हारे लिए खड़ी है।

लगता है कि स्वतन्त्रता की ओर कश्मीरी कवि का ध्यान भारतीय कवि से अपेक्षाकृत बाद में गया। १९वीं शती में भारत के बहुपक्षीय जीवन में परिवर्तन उपस्थित हुए। इसी समय दक्षिण में 'सुब्रह्मण्य भारती' ने आन्दोलन का नेतृत्व किया। बंगाल में 'राजा राममोहनराय' और 'महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर' प्रभृति व्यक्ति और हिन्दी में 'भारतेन्दु' से व्यक्तित्व प्रकट हुए। साहित्य के इतिहास को देखने से पता लगता है कि 'महजूर' और 'आजाद' ने कश्मीरी में इस प्रकार की धारा का आरंभ किया। 'महजूर' ने जब नये काश्मीर के निर्माता के प्रति यह शब्द कहे तो कश्मीरी काव्य की वस्तु में काफी परिवर्तन प्रकट हुए थे—

जाग जाओ बागवान !
बाग में एक बार फिर हर्ष उत्पन्न कर,
गुलाबों को एक बार फिर खिला !

इसी लिए काव्यालंकारों में सूक्ष्मता प्रकट होने लगी। मास्टर ज़िंदा कौल ने लिखा है—

जब मेरे प्रेम की जलती मूर्ति ने मुझे अभिभूत किया
श्वास के वन में एक आग भड़क उठी
हवा तेजी से आग को और जलाने लगी

जो कुछ मैंने बचा रखा था वह अग्नि की भेंट हो गया
हृदय में भी आग लगी
इसकी लपटों की चपेट में जिगर भी आगया
और सभी देखने वाले चिला उठे—
आग रे ! आग !!

अन्त में हम एक आलोचक को उद्‌वृत करते हैं—

"फारसी की आज से ५० वर्ष पूर्व की सी स्थिति भी आज उर्दू की नहीं और जो प्रभाव दरबारी सम्मान और आन्तरिक काव्य-गुणों के होते हुए फारसी कविता (कश्मीरी काव्य पर) डाल सकी। वैसे प्रभाव की आशा उर्दू से नहीं की जा सकती।"
(प्रो० जि० ला० कौल)

हम यह अवश्य कह सकते हैं कि इन पंक्तियों के लिखने के बाद से समय बहुत बदल चुका है। भारतवर्ष में उर्दू का प्रभाव बढ़ गया है और उन भाषाओं पर इसका प्रभाव होना अवश्यम्भावी है जिन पर भूतकाल में फारसी का प्रभाव रहा है। लेकिन एक बात का ध्यान आ ही जाता है यद्यपि वह प्रस्तुत विषय से सीधा सम्बन्ध नहीं रखती। उर्दू भारत की भाषा है, वह यहीं जन्मी है अतः इसकी शिराओं में भारतीय रक्त दौड़ता रहना चाहिए। हम यह दलील भले ही दें कि उर्दू काव्य की रीढ़, लखनऊ की नवाब-संस्कृति, शुद्ध भारतीय है। परन्तु इतना ही काफी नहीं। उर्दू में विभिन्नता की प्रवृत्तियां अभी भी मौजूद हैं और भारत के सांस्कृतिक इतिहास का पाठक यह देखकर दुःखी होता है कि शेष १२ भाषाओं ने एक ही परम्परा को अपनाया है। मैंने बारह ही भाषाएं इसलिए कहीं जिससे तेरहवां स्थान कश्मीरी के लिए सुरक्षित रहे, क्योंकि स्वयं कश्मीरी भाषा भी इसी प्रभाव से ग्रस्त है। शायद इसी कारण कई कश्मीरी लेखक इस बात पर बहस करने पर तुल गए थे कि कश्मीरी कविता में एक जमाव सा आ गया है। कई कवि 'लल्लद्यद' और 'नुन्द ऋषि' द्वारा प्राप्त आध्यात्मिक स्तर पर से बोलते दिखाई देते हैं और कइयों ने कसीदे और जगनामे लिखने शुरू किए हैं। शेष का वही स्वर हैं, वही गजल की रट लगी है। मुशायरे आज भी १९ वीं शती जैसे उत्तेजक और खिलवाड़ भरे होते हैं और श्रोता उनकी समाप्ति पर अपनी खोपड़ी को झुनझुनाता सा पाता है। कई आलोचकों का यह मत उपयुक्त है कि ये परिणाम उन असंख्य परिणामों में से कुछ एक अभी दिख रहे हैं जो कश्मीरी काव्य के पाठक को अभी देखने होंगे यदि इन भिन्नता की प्रवृत्तियों को परिवर्तित न किया जाए।

स्वाधीनता के बाद हिन्दी-साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

विष्णुकान्त शास्त्री

काल के अखंड प्रवाह में किसी महान घटना को सीमा चिन्ह बनाकर अपनी प्रगति का सर्वेक्षण करते रहना अत्यन्त स्वाभाविक है । निश्चय ही आधुनिक भारतीय इतिहास में स्वाधीनता ऐसी ही महान घटना है, जिसे आरम्भिक बिन्दु मानकर बाद की विकास रेखाओं को अंकित करना समीचीन जान पड़ता है ।

एक बहुत प्रचलित उक्ति है 'साहित्य समाजका दर्पण है' । इस अत्यन्त सरलीकृत वक्तव्य के अभिधार्थ के आधार पर बहुत से लोग छोटी बड़ी समसामयिक घटनाओं का प्रतिबिम्ब साहित्य में ढूंढते फिरते हैं और उन घटनाओं का मनोनुकूल साहित्यिक साक्ष्य न पाकर फतवा देन लगते हैं कि समाज से साहित्य कट गया है । उन्हें समझना चाहिए कि समसामयिक जीवन में जो कुछ घटता है, साहित्य में उसका तात्कालिक प्रतिफलन देखने की चेष्टा बहुत कुछ सूरदास के बालकृष्ण की उस चेष्टा के समान है जो दूध पीते न पीते अपनी चोटी को टटोल कर देख लेना चाहते हैं कि वह कितनी बढ़ गयी ! सामयिक जनजीवन की घटनाओं का (विशेष कर ऐसी घटनाओं का,जिनसे साहित्यकार का सीधा व्यक्तिगत रागात्मक सम्बन्ध नहीं बन पाया है) साहित्य में सद्य: प्रतिफलन बहुत बार सतही हो जाता है । अपेक्षाकृत रूप से सफल कृतियों में भी अनुभूति का ऊष्ण स्पर्श भले हो किन्तु प्राय: संयोजित समग्र की अन्वित चेतना नहीं रहती, जिसके अभाव में कोई साहित्यिक कृति महान् नहीं हो सकती । फिर राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन लानेवाली घटनाएं साहित्य में सीधे-सीधे आयें, यह अनिवार्य तो नहीं ही है, आवश्यक भी नहीं है । जिस प्रकार भोजन शरीर को पुष्ट करता है किन्तु शरीर की अपनी पाचन

प्रक्रिया के अनुसार ही, उसी प्रकार ये घटनाएँ परिपचित होकर जब संस्कार बन जाती हैं तभी उनके ऊपर बड़ी साहित्यिक रचना संभव हो पाती है। अत: हम स्वाधीनता या उसके बाद बड़ी बड़ी राष्ट्रीय घटनाओं का साहित्यक उपलब्धियों से समीकरण बैठाने नहीं जा रहे हैं। हमारी चेष्टा होगी कि हम उन प्रवृत्तियों को उपस्थित करें जिन्होंने इसकाल की साहित्य सर्जना को गति और आकर दिया है।

इसके लिए आवश्यक है कि हम स्वाधीनता के बाद भारतीय चेतना में अपनी पूर्वस्थिति से आये अन्तर को समझ लें। स्वाधीनता के पूर्व भारत की प्रमुख प्रेरक राष्ट्रीय इच्छा थी स्वाधीनता पाने की। स्वभावत: अपनी संस्कृति के प्रति गहरी भक्ति थी, स्वाधीनता आन्दोलन के लिए बलिदान देने एवं कष्ट वरण करने की भावना की प्रधानता थी।

स्वाधीनता के बाद राष्ट्र निर्माण की लगन ही हमारी राष्ट्रीय प्रवृत्ति होनी चाहिए थी किन्तु दुर्भाग्य से अपेक्षित मात्रा में ऐसा नहीं हो सका। राष्ट्रनिर्माण हो, इस इच्छा को क्रिया में परिवर्त्तित करने के लिए व्यक्तिगत रूपसे मुझे त्याग करना चाहिए यह भावना सामान्य जन में नहीं पनपी। राष्ट्रनिर्माण के कार्य को सरकारी जिम्मेदारी मान लिया गया। यह दु:खद सत्य है कि जनता का सक्रिय अंशग्रहण उसमें बहुत कम रहा पूंजीवादी या समाजवादी विकास-यात्रा के लिये अनिवार्य राष्ट्रीय श्रम एवं संयम के बिना ही उनके फलों को प्राप्त करने की बालिश इच्छा ने नेतृवर्ग और जनता दोनों को सम्मोहित सा कर दिया। उधार के पैसे, उधार के जीवन-दर्शन और उधार की विशेषज्ञता के आधार पर हमारी पंचवर्षीय योजनाएं बनीं। सम्मोहित जनमानस स्वप्न देखने लगा कि अब शीघ्र ही हमारे सभी दु:ख-दर्द दूर होंगे, हमारा जीवन-मान भी शीघ्र ही पश्चिमी देशों के जीवन-मान की तरह हो जाएगा, किन्तु ऐसा नहीं हुआ, होना संभव ही नहीं था। सबसे अधिक सपने मध्यवर्ग ने देखे थे अत: सबसे अधिक कटुता भी उसी में आई। और साहित्यकार मुख्यत: इसी वर्ग की देन है!

स्वाधीनता के पहले राष्ट्रीयता की उग्र भावना के कारण पश्चिमी आचार, विचार, संस्कार पर अंकुश था। स्वाधीनता के बाद अन्तर्राष्ट्रीयता और आधुनिकता के नाम पर उसकी निवृत्ति हो गई। भारतीय मुद्रा का अवमूल्यन तो बाद में हुआ, भारतीय संस्कृति का अवमूल्यन स्वतन्त्रता के बाद तुरन्त हो गया। भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के अन्वेषण, स्वीकरण और विकास के स्थान पर उन्हें पिछड़ा प्रतिगामी करार देकर उनके प्रति अश्रद्धा की भावना फैलायी गई। अन्तर्राष्ट्रीयता और आधुनिकता के स्वस्थ तत्त्व निश्चय ही काम्य है किन्तु इस तथ्य की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया

गया कि जब हम भारतीय बने रहकर ही अन्तर्राष्ट्रीय और आधुनिक बनेंगे तभी राष्ट्र की वास्तविक शक्ति जाग पायेगी। आज हुआ यह है कि उच्च मध्य वर्ग और उच्च वर्ग के बच्चे अंग्रेजी माध्यम के (अधिकतर ईसाई मिशनरी) स्कूल, कालेजों में पढ़ते हैं, आधुनिकता के उदार बौद्धिक एवं सांस्कृतिक तत्त्व कितनी मात्रा में ग्रहण करते हैं यह कहना तो मुश्किल है किन्तु भारतीय परम्परा एवं रीति-नीति के प्रति अवज्ञा एवं पश्चिमी सभ्यता के सपाट अन्धे अनुकरण के द्वारा अपना एवं अपने परिवारों का आधुनिकीकरण अवश्य करते जा रहे हैं, जिसकी अभिव्यक्ति किंभूत किमाकार वेश-भूषा, उच्छृंखल भोगपरकव्यवहार, ट्विस्ट, रौकएन रोल तथा क्लबों एवं रेस्तराओं के कोलाहलपूर्ण किन्तु अन्तःसारशून्य जीवन में हो रही है। अवचेतन मन में भरे हुए भारतीय संस्कार और चेतन मन में उनके प्रति अवज्ञा ने जहां उनके व्यक्तित्व को विभाजित किया है वहीं पश्चिम की श्रेष्ठता के आंतक ने उनमें हीनता की भावना भी भरी है। इसका सम्यक् प्रतिविधान करने के लिए स्वाधीनता के बाद कोई बड़ी प्रचेष्टा नहीं हुई है।

हमारे बुद्धिजीवी विश्व चेतना के वैज्ञानिक, वैचारिक, एवं भाविक स्तरों तक पहुंचने की चेष्टा में बहुत आगे बढ़ गए हैं। उनकी तुलना में जनसाधारण की प्रगति बहुत मन्द है। परिणाम यह है कि आज जनता और बुद्धिजीवियों की चिन्तन-धारा और अनुभूति में बहुत बड़ा विच्छेद आ गया है। भारतीय भाषाओं में ज्ञान-विज्ञान के नवीनतम विकासों की सूचक पुस्तकों का करीब करीब अभाव होने के कारण इस समय हमारी साधारण शिक्षित जनता का भी बहुत बड़ा भाग उनसे अपरिचित ही है। इस विच्छेद के कारण बुद्धिजीवी जनसाधारण की आत्मीयता और श्रद्धा पाने में सफल नहीं हो रहे हैं।

बुद्धिजीवी अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तरों पर हुए मोहभंग की पीड़ा भी झेल रहे हैं। पश्चिमी और साम्यवादी राष्ट्रों द्वारा जनतन्त्र और साम्यवाद के पावन सिद्धांतों की आड़ में अपने-अपने राष्ट्रीय या दलीय स्वार्थों की पूर्ति के लिए किए जाने वाले अमानवीय क्रिया-कलाप, तृतीय विश्वयुद्ध में समस्त मानव सभ्यता के नश्चिह्न होने की घोरतर आशंका, किसी तेजस्वी नवीन आदर्शवादी दृष्टि का अभाव यदि अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर उनके मोहभंग के कारण हैं तो आदर्शों का विघटन, राष्ट्रीय नेतृत्व की दुर्बलता, अयोग्यता, देश में व्याप्त भयंकर भ्रष्टाचार, गरीबी, बेकारी और उससे मुक्ति पाने की आशु संभावना का न होना राष्ट्रीय स्तरों पर उनकी कुंठा के कारण हैं।

यह नहीं है कि अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तरों पर आशा और साहस के साथ आगे बढ़ने की प्रेरणा देने वाले तत्त्व हों ही नहीं । अन्तरिक्ष विजय, युद्ध के विरुद्ध व्यापक जनमत, सहअस्तित्व की चेतना, उपनिवेशों की स्वतन्त्रता, विकसित राष्ट्रों का अविकसित राष्ट्रों से आर्थिक सहयोग आदि । यदि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में आशा की किरणें हैं तो राष्ट्रीय क्षेत्र में लोकतन्त्र की जड़ों का दृढ़ होना, भूदान आन्दोलन, चीन और पाकिस्तान से होने वाले युद्धों में साक्षात्कृत राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की चेतना आदि ऐसे ही आश्वस्त करने वाले तत्त्व हैं । किन्तु फिर भी यह मानना चाहिए कि राष्ट्रीय स्वतन्त्रता से जागने वाली अभिलाषाएं, आकांक्षाएं बड़े पैमाने पर अतृप्त रहने के कारण इस समय देश में विक्षोभ और कुंठा अधिक व्याप्त हैं ।

इस राष्ट्रीय मनःस्थिति को दृष्टिगत रखकर ही हिन्दी के स्वातंत्र्योत्तर साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों की विवेचना सम्भव है । स्वतन्त्रता के पूर्व हिन्दी साहित्य में परिलक्षित होने वाली प्रमुख प्रवृत्तियां थीं (क) राष्ट्रीय सांस्कृतिक प्रवृत्ति (ख) स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति (ग) प्रगतिवादी प्रवृत्ति (घ) प्रयोगशील प्रवृत्ति । स्वतन्त्रता के बाद का हिन्दी साहित्य मुख्यतः इन्हीं प्रवृत्तियों के संकोच, विस्तार एवं रूपान्तर के कारण आकार ग्रहण करता रहा है । अतः इन प्रवृत्तियों के क्रमिक विश्लेषण द्वारा हम आज के हिन्दी साहित्य को समझने की दृष्टि पा सकते हैं ।

राष्ट्रीय सांस्कृतिक प्रवृत्ति—वास्तव में किसी भी देश के साहित्य के मूलाधार के रूप में उस देश की राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना ही रहती है । हां, कभी यह अत्यन्त मुखर हो साहित्य को प्रत्यक्ष प्रेरणा देती है, कभी नेपथ्य से विविध साहित्यिक आन्दोलनों को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती रहती है । हिन्दी साहित्य में पुनर्जागरण काल से आरम्भ कर स्वाधीनता की प्राप्ति तक इसका प्रभाव असंदिग्ध रूप से सर्वाधिक था । न केवल पुनरुत्थानवादी, गांधीवादी, राष्ट्रीयतावादी साहित्य में ही इसकी प्रेरक भूमिका प्रत्यक्ष होती है, बल्कि छायावादी, रचनाओं में भी देशभक्ति एवं सांस्कृतिक मूल्यों के समावेश में इसी प्रवृत्ति की प्रेरणा थी । प्रगतिशील और प्रयोगशील साहित्य को भी इसका सम्बल प्राप्त था यद्यपि उनकी दृष्टि अन्तर्राष्ट्रीय प्रेरणा स्रोतों की ओर अधिक लगी हुई थी ।

पीढ़ियों की दृष्टि से भी यदि विचार किया जाए तो स्वाधीनता के समय और उसके बाद सृजनरत हिन्दी साहित्यकारों में सबसे वरिष्ठ पीढ़ी के साहित्यकार इसी प्रवृत्ति के थे । उनमें से कुछ ने राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन में प्रत्यक्ष भाग लिया

था कुछ उसके पार्श्ववर्ती सहचर थे। स्वाधीनता के बाद इस प्रवृत्ति ने तीन प्रकार की साहित्यिक कृतियां प्रस्तुत कीं, पहले प्रकार की तो वे जिनमें प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति के उज्ज्वल पक्ष उद्घाटित किए गए थे, दूसरे प्रकार की वे जिनमें भारतीय और पश्चिमी, प्राचीन और अर्वाचीन जीवन-मूल्यों का समन्वय करने का प्रयास किया गया था। तीसरे प्रकार की रचनाओं में समसामयिक घटनाओं एवं प्रश्नों को आधार बनाया गया था। पहले प्रकार की रचनाओं का उद्देश्य स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन और साहित्य को अपनी परम्परा से अनुप्राणित करना भी था। इस कोटि की उल्लेख्य कृतियों में मैथिलीशरणगुप्तकृत जयभारत एवं विष्णुप्रिया, सियारामशरणगुप्त कृत गोपिका, महादेवीवर्माकृत सप्तपर्णा आदि काव्य ग्रन्थ लक्ष्मीनारायण मिश्रकृत, वत्सराज, वितस्ता की लहरें, सेठ गोविन्ददास एवं हरिकृष्ण प्रेमी के नाट्य-ग्रन्थ तथा वृन्दावनलालवर्माकृत मृगनयनी, माधवजी सिन्धिया, चतुरसेन शास्त्रीकृत वैशाली की नगर वधू, जय सोमनाथ जैसे उपन्यास ग्रन्थ आते हैं।

दूसरे प्रकार की रचनाएं अधिक विचार-प्रधान एवं संश्लेषणात्मक हैं, स्वभावतः उनकी संख्या विरल है। अरविन्द, राधाकृष्णन एवं विनोबा के चिन्तन ने इनके लिए आधारभूमि प्रस्तुत की है। मैथिलीशरणगुप्त कृत पृथ्वीपुत्र, सुमित्रानन्दन पन्तकृत उत्तरा, सौवर्ण एवं सर्वोपरि लोकायतन, जैसे काव्य ग्रन्थ जैनेन्द्रकृत जयवर्धन जैसे उपन्यास ही इस धारा का सबल प्रतिनिधित्व करते हैं। आलोचना के क्षेत्र में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सौन्दर्य शास्त्र पर एवं डा० नगेन्द्र ने रस सिद्धांत पर इस दृष्टि से मौलिक कार्य किया है।

तीसरे प्रकार की रचनाओं की संख्या बहुत अधिक है किन्तु उनमें स्थायी साहित्यिक मूल्य अपेक्षाकृत रूप से कम है। स्वाधीनता की प्राप्ति, देश-विभाजन, महात्मा गांधी के बलिदान, भूदान आन्दोलन, चीन और पाकिस्तान से हुए युद्ध जैसी राष्ट्रीय जीवन को गम्भीर रूप से प्रभावित करने वाली घटनाओं तथा सामयिक समस्याओं पर लिखा गया साहित्य परिमाण में अत्यधिक होते हुए भी गुण की दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट नहीं है। मेरा विश्वास है कि इनमें से कुछ घटनाओं पर भविष्य में अधिक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कृतियां निर्मित होंगी। युद्धकाव्य में दिनकर की 'परशुराम की प्रतीक्षा' ही ऐसी कृति है जिसमें राष्ट्रीय क्रोध एवं प्रतिशोध के संकल्प की सम्यक् रूप से अभिव्यक्ति हुई है।

राष्ट्रीय सांस्कृतिक प्रवृत्ति की प्रेरणा से रचित साहित्य में कई महत्त्वपूर्ण एवं स्थायी मूल्यों से युक्त उत्कृष्ट कृतियों के बावजूद यह मानना पड़ता है कि ये बुजुर्ग साहित्यकार वर्तमान के जीवन्त प्रश्नों से अपेक्षाकृत रूप से कम उलझे हैं।

भारतीय संस्कृति के स्वस्थ तत्त्वों के आधार पर या उसका पश्चिमी संस्कृति से समन्वय कर भविष्य की रचना की राष्ट्रीय चेतना ही इनका प्रमुख प्रेरक तत्त्व है किन्तु नए साहित्य को प्रभावित कर पाने में या नए साहित्यकारों की दृष्टि में परिवर्तन लाने में इनका प्रयास विशेष सफल नहीं हो सका। अपनी राष्ट्रीयता और संस्कृति के प्रति गौरवबोध का नए साहित्यकारों में नितांत अभाव हो गया हो, ऐसा भी नहीं है, किन्तु यह सही है कि उन्होंने समसामयिक जीवन की निर्मम समस्याओं का विवेचन राष्ट्रीयता और संस्कृति के प्रति भावात्मक लगाव की रंजित दृष्टि के स्थान पर अधिक यथार्थवादी एवं बौद्धिक दृष्टि से करना चाहा है। वैसे अपना सांस्कृतिक आधार पूर्णरूपेण त्याग देना किसी के लिए सम्भव नहीं है, अपनी संस्कृति का विरोध करने वालों के लिए भी नहीं, अतः अन्य प्रवृत्तियों से परिचालित साहित्यकारों की कृतियों में भी राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के तत्त्व मिल सकते हैं किन्तु यह सत्य हमें स्वीकार कर लेना चाहिए कि हिन्दी साहित्य के नव सृजन में यह धारा अन्तःसलिला फल्गु की तरह अन्तर्निहित है, साहित्य की प्रमुख धारा के रूप में कार्यशील नहीं।

स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति—रूढ़िविरोधी, मानवतावादी मुक्त वैयक्तिक चेतना की वाहिका के रूप में यह प्रवृत्ति छायावादी कहे जाने वाले साहित्य में व्याप्त रही। न केवल साहित्यिक वस्तु में बल्कि अभिव्यंजना शैली में भी नवीनता लाने का श्रेय इसे प्राप्त है। छायावाद की सुकुमार प्रेमानुभूति एवं प्रकृति प्रीति पर भी इसकी छाप अत्यन्त स्पष्ट है। उत्तर छायवादियों की मस्ती भरी मांसल प्रणय भावना, भावुकता, आवेगमयी सरल अभिव्यंजना भी इसी प्रवृत्ति की देन है। स्वाधीनता के बाद भी सीमित रूप से यह प्रवृत्ति सक्रिय रही एवं लोकप्रिय साहित्य में अब भी इसकी प्रधानता मानी जा सकती है। स्वाधीनता के बाद की इस प्रवृत्ति की उत्कृष्ट उपलब्धियों के रूप में बच्चन की मिलन यामिनी तथा प्रणय पत्रिका, भगवतीचरण वर्मा की रंगों से मोह, दिनकर की उर्वशी जैसी काव्य कृतियां, भगवती बाबू कृत आखिरी दांव, रेखा, धर्मवीर भारती कृत गुनाहों का देवता जैसे उपन्यासों की गणना की जा सकती है। अपेक्षाकृत रूप से नये साहित्यकारों में गीतकार ही इस प्रवृत्ति को पूर्णतः अपनाकर चले और सम्भवतः इसकी सस्ती अभिव्यंजना के कारण ही आधुनिक कवियों ने गीत को महत्वपूर्ण काव्य विधा मानने से इन्कार कर दिया। यह सन्तोष की बात है कि नवगीत के रूप में उसकी पुनः प्रतिष्ठा की चेष्टा चल रही है।

आज के समस्याबहुल यथार्थवादी युग में अपने दुर्बल दार्शनिक बौद्धिक आधार के कारण यह प्रवृत्ति गम्भीर विचारकों एवं कृतिकारों द्वारा अधिक समादृत नहीं हो सकी। असंगठित वैयक्तिक प्रयासों के रूप में क्रियाशील होने के कारण भी यह प्रवृत्ति

संगठित साहित्यिक प्रवृत्तियों के आक्रमण नहीं झेल सकी। साहित्य में भावुकता के अवमूल्यन एवं रूढ़िविरोधिता तथा मानवतावादी भावना की अन्य वैचारिक आधारों पर स्थापना के फलस्वरूप यह प्रवृत्ति अपनी प्रेरक शक्तियों से वंचित हो गई। फिर भी यह सच है कि बहुत से प्रगतिशील और प्रयोगशील माने जाने वाले साहित्यकारों पर इस प्रवृत्ति की गहरी छाप है।

प्रगतिवादी प्रवृत्ति—शोषण, उत्पीड़न का अन्त कर मानव की सामूहिक मुक्ति का आदर्शवादी स्वप्न तथा मार्क्सवाद का प्रबल बौद्धिक आधार लेकर विश्वव्यापी आन्दोलन के अंग के रूप में १९३६ के आसपास यह प्रवृत्ति हिन्दी साहित्य में प्रकट हुई थी। पराधीन राष्ट्र की विक्षुब्ध उग्र युवा चेतना ने इसका स्वागत किया और बहुत ही शीघ्र इसने अपने को प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्ति के रूप में स्थापित कर लिया। उस समय का प्रगतिशील लेखक संघ एक प्रकार से सभी प्रगतिकामी लेखकों का संयुक्त साहित्यिक मोर्चा था किन्तु धीरे-धीरे वह कम्युनिस्ट पार्टी के साहित्यिक मोर्चे के रूप में परिणत हो गया और शील का स्थान वाद ने ले लिया। परिणाम यह हुआ कि स्वतन्त्रचेता साहित्यिकार उससे अलग हो गए या अलग कर दिए गए। यह कठ-मुल्लापन स्वयं इस प्रवृत्ति एवं संघ के लिए घातक हुआ। स्वतन्त्रता के पहले ही प्रगतिशील माने जाने वाले कुछ स्वतन्त्रचेता साहित्यकार इससे अलग हो गए थे और स्वतन्त्रता के बाद तो आंतरिक एवं बाह्य अनेक कारणों से इसकी शक्ति और भी क्षीण हो गई। प्रगति की शोषण विरोधी संघर्षशीलता, विकसित ऐतिहासिक दृष्टि, मानव भविष्यके प्रति आस्था, सामाजिक पुनर्निर्माण एवं सामाजिक दायित्वके प्रति निष्ठा स्वागतयोग्य विशेषताएं हैं तो साहित्य पर राजनीति का प्राणघातीअंकुश, व्यक्ति चेतना का तिरस्कार तथा आध्यात्मिक मूल्यों का सर्वथा बहिष्कार उसके ऐसे तत्त्व हैं जो भारतीय संस्कार के नितान्त विरुद्ध हैं। राजनीतिक दृष्टि से कम्युनिस्ट न होते हुए भी बहुत से साहित्यकार इसके उज्ज्वल पक्ष से प्रभावित हैं। प्रगतिवादी खेमे में आलोचना बल्कि फतवों की जितनी प्रधानता है कृति साहित्य की उतनी नहीं। फिर भी स्वतन्त्रता के बाद इसकी प्रमुख उपलब्धियों के रूप में केदारनाथ अग्रवाल कृत 'फूल नहीं रंग बोलते हैं', नागार्जुन कृत 'सतरंगे पंखों वाली' तथा 'प्यासी पथराई आँखें' जैसी काव्य कृतियां यशपालकृत 'मनुष्य के रूप' तथा 'झूठा सच', नागार्जुन कृत बाबा बटेसर नाथ' जैसे उपन्यास एवं राम विलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान तथा नामवर सिंह की व्यावहारिक आलोचनाओं की गणना की जा सकती है। उपेक्षित और तुच्छ समझे जाने विषयों का साहित्य में समावेश तथा मानव सम्बन्धों की वर्गवादी दृष्टि से विवेचना इस धारा की प्रमुख देन हैं। वस्तु को अत्यधिक प्रधानता देने के कारण शिल्प की उपेक्षा इन साहित्यकारों ने प्रायः की है। इस धारा के अपेक्षाकृत अल्प सामर्थ्य

वाले साहित्यकारों की रचनाएं प्रचारात्मक एवं सपाट हो जाती हैं । यह भी इनकी एक सीमा है । इस तथ्य को स्वीकार कर लेना चाहिए कि प्रथम श्रेणी की नवीन प्रतिभाओं ने कतिपय प्रगतिशील तत्वों को आत्मसात् करते हुए भी प्रगतिवादी मठाधीशों के अंकुश को मानने से इन्कार कर दिया है । प्रगतिवादी आन्दोलन में नवदीक्षित साहित्यकार प्राय: दुर्बल साहित्यिक कृतियां ही दे पाये हैं । यह तो ठीक है कि अपने राजनैतिक आधार के कारण यह प्रवृत्ति हिन्दी साहित्य में अब भी अपना स्थान बनाए हुए हैं किन्तु यह तो ठीक है कि इस का विकास अवरुद्ध हो चुका है और 'वाद' का रूपांतर यदि पुन: शील में न हुआ तो सम्भवत: यह अपना वर्तमान स्थान भी न बनाए रख सके ।

प्रयोगशील प्रवृत्ति— प्रगतिवादी प्रवृत्ति के सांचे ढले समाज की कल्पना से कुंठारहित इकाई को अच्छा मानने वाले कुछ प्रगतिशील साहित्यकारों ने ही १९४३ के आसपास नये ढंग से सोचना और लिखना शुरू किया । उन्हें यह भी लगा कि परम्परागत जीवन मूल्य-एवं साहित्यिक रूपविधान एकदम घिस गए हैं । प्रगतिवादी जीवत मूल्यों एवं साहित्यिक रूपविधान से भी वे असन्तुष्ट थे । बनी बनायी राहों को अनुकूल न पाकर ये साहित्यकार अपनी राहों के स्वयं अन्वेषी हुए और नए प्रयोगों में प्रवृत्त हुए । प्रयोगों पर अधिक बल देने के कारण पहले इन्हें प्रयोगवादी भी कहा गया किन्तु उनकी दृष्टि में यह कहना उसी प्रकार अर्थहीन था जिस प्रकार किसी को कवितावादी कहना । उनका मत था कि प्रयोग कोई वाद न होकर सृजनशील प्रतिभा का धर्म होता है । परम्परावादी एवं प्रगतिवादी विचारकों के प्रबल विरोध के बावजूद इस प्रवृत्ति ने स्वाधीनता के बाद ही अपने को प्रतिष्ठ कर लिया । चूंकि यह प्रवृत्ति कविता में ही सर्वप्रथम प्रकट हुई थी अत: पूर्ववर्ती काव्य-परम्परा से इन कविताओं की भिन्नता संकेतित करने के लिए इन्हें नयी कविता की संज्ञा दी गयी । नयी कविता के वजन पर ही नई कहानी, नया नाटक नयी आलोचना नवगीत या नया गीत जैसे नाम भी चले । यद्यपि इन परवर्त्ती आन्दोलनों के प्रवर्त्तक अपने को नई कविता की प्रवृत्तियों से अनुप्रेरित नहीं मानते हैं किन्तु व्यापक दृष्टि से विचार करने पर उनका दावा सही नहीं लगता । वास्तव में नयेपन की ये पुकारें एक ही मूलभूत प्रवृत्ति की विविध परिणतियां हैं । उस प्रवृत्ति के ऋणात्मक तत्त्व हैं संकीर्ण व्यक्तिवादिता, अनास्था, कुण्ठा, मोहभंग से उत्पन्न शंकाशीलता आदि और धनात्मक तत्त्व है वैज्ञानिक चेतना, मानववाद, रूढ़िमुक्त बौद्धिक दृष्टि, व्यक्ति स्वातंत्र्य आदि । पूर्व विवेचित अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय परिस्थितियों में कुछ संवेदनशील प्रतिभाओं का अपनी सारी पीढ़ी की ही नहीं मानव मात्र को अभिशप्त समझना और भविष्य के प्रति आस्थाहीन हो जाना असम्भव नहीं है । किन्तु ऐसा भी नहीं है कि सबके सब नए लेखक सर्वथा

आस्थाहीन ही हों। स्वयं अज्ञेय के लेखन का पर्याप्त अंश आस्था से युक्त है। भवानी प्रसाद मिश्र तो आस्थावादी हैं ही और भी अनेकों नये लेखकों ने मानव भविष्य के प्रति आस्था दृढ़ रखी है। यद्यपि यह भी सच है कि कुछ नए साहित्यिकारों ने विश्व साहित्य के स्तर पर आने की होड़ा-होड़ी में राष्ट्रीय जीवन के विकास क्रम को एवं उसके वर्त्तमान स्वस्थ मूल्यों को भी दृष्टि से ओझल कर पश्चिमी संस्कृति की समस्याओं को अपनी समस्याओंके रूप में ग्रहण करने की चेष्टा की है। इसका एक प्रमाण यह भी है कि अभी नई कविता, नई कहानी आदि के साथ ही साधारण शिक्षित जनता समरस नहीं हो पाई थी कि पश्चिमी हवा का इशारा पहचानकर यहां भी लोगों ने अकविता, अकहानी, अनाटक की हांक लगानी शुरू कर दी। अत्याधुनिकों द्वारा जीवन को एक व्यापक ट्रैजेडी बल्कि अर्थहीन मानने का आग्रह, अतीत और भविष्य के प्रपंच में न पड़कर भुक्त क्षण के प्रति ईमानदार होने की घोषणा, भोगे हुए यथार्थ को उसकी समस्त कुरूपताओं या विकृतियों के साथ अभिव्यक्त करने का प्रयास मूलध्वनि से कहीं अधिक प्रतिध्वनि सा लगता है। जैसे जीवन में वैसे ही साहित्य में भी उधार ली हुई भावना, उधार ली हुई भाषा और उधार लिया हुआ शिल्प कृत्रिम प्रगति का ही आभास देते हैं। किन्तु जिन समर्थ लेखकों ने पश्चिम के प्रभाव को यहां के जीवन से समंजित कर ग्रहण किया है उन्होंने अधिक विश्वसनीय रूप से आधुनिक भारतीय जीवन को उसकी समग्रता में अंकित किया है।

नये साहित्य की विशिष्ट उपलब्धियों के रूप में उल्लिखित की जा सकती हैं अज्ञेय कृत 'आंगन के पार द्वार' मुक्तिबोध कृत 'चांद का मुंह टेढ़ा है,' भारती कृत 'कनु प्रिया' जैसी काव्य पुस्तकें, अज्ञेयकृत 'नदी के द्वीप', अमृतलाल नागर कृत 'बूंद और समुद्र' अथा 'अमृत और विष', फणीश्वर नाथ रेणु कृत 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' जैसे उपन्यास जगदीशचन्द्र माथुर कृत 'कोणार्क', मोहन राकेश कृत 'आषाढ़ का एक दिन, भारती कृत 'अन्धा युग', लक्ष्मीनारायणलाल कृत 'मादा कैक्टस' जैसे नाटक, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव आदि की कुछ कहानियां। मोटे तौर पर स्वतन्त्रता के बाद के हिन्दी साहित्य में व्यक्तिकेन्द्रिक एवं समाजकेन्द्रिक दो धाराएं प्रवहमान हैं। दोनों ही अपनी अतिवादी स्थितियों में वर्त्तमान मनःस्थिति का सम्यक् प्रतिनिधित्व करने में असमर्थ हैं। कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाए तो सामान्य तौर पर नया हिन्दी लेखक व्यक्तिवादी होते हुए भी सामाजिक दायित्व बोधसम्पन्न है या समाजवादी होते हुए भी व्यक्ति चेतना का तिरस्कार नहीं करता है। उदात्त सामाजिक आदर्शों के मोहक नारों पर वह सहज ही विश्वास नहीं करता किन्तु मनुष्य को पशु भी नहीं मानता। निर्बन्ध यौन चित्रण की ओर उसका झुकाव बढ़ा है। वर्जनाओं और मर्यादाओं के अतिक्रमण करने की प्रवृत्ति इसके मूल में है। वीभत्स यौण चित्रण में रुचि लेना

निश्चय ही अस्वस्थ मनोदशा का सूचक है। महामानव चरित्रों के पीछे दौड़ना छोड़ लघुमानव की अपनी सीमाओं की गहरी परतों को उधेड़ कर देखने का उसका आग्रह है। नए साहित्य में सामाजिक परिवेश से कटे असामान्य मनोविज्ञान के केस सरीखे एकाकी व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्व भी चित्रित हुए हैं तो अंचल विशेष के समग्र जीवन को मूर्त्त कर देने के सफल प्रयास भी हुए हैं। दृष्टियों एवं प्रयोगों की विविधता नये साहित्य को किसी एक संगठित साहित्यिक आन्दोलन से अधिक आन्दोलन समूह के रूप में उपस्थित करती है। इन नए साहित्यकारों का जो वर्ग अपने आधार से कट कर शंका और अनास्था को ही चरम मूल्य समझने लगा है उसके भविष्य के बारे में आशावान् होना कठिन है किन्तु जो वर्ग अपने सांस्कृतिकदाय को ग्रहण करता है, प्रगति की साम्प्रदायिक व्याख्या को अस्वीकार करके भी सामाजिक मंगल से अपने को प्रतिबद्ध मानता है, जो साहित्य को प्रचार या शयनकक्ष दैनिकी से भिन्न आत्मोपलब्धि का माध्यम मानता है, उसके प्रति आस्थावान् होना ही चाहिए।

साहित्य को विशेषज्ञों की वस्तु बना देने की भी एक प्रवृत्ति परिलक्षित हो रही है। साधारणीकरण के स्थान पर विशेषीकरण करने का आग्रह प्रबल हो रहा है। कथ्य और शिल्प दोनों में जटिलता, असम्बद्धता, मनमानी प्रतीक्षात्मकता की योजना मात्र से कोई कृति चौंकाने में भले समर्थ हो जाये किन्तु सहृदयों को ग्राह्य नहीं हो सकती। 'बुध-विश्राम सकल जन रंजनि,' रचनाएं ही वस्तुतः बड़ी रचनाएं होती हैं।

मेरी समझ में साहित्य की राष्ट्रीय सांस्कृतिक प्रवृत्ति को आधुनिक रूप देने की समस्या ही नए साहित्यकारों के लिए वास्तविक चुनौती है। यह कार्य न तो अनुकरण से हो सकता है, न अनास्था से। सम्पूर्ण परम्परा से अर्थहीन द्रोह आत्मघात का ही दूसरा नाम है जबकि परम्परा के जड़ पड़ते जाने वाले अंश से विद्रोह करना, उसे नवीन परिवेश की नवीन चुनौतियों को ग्रहण करने के योग्य बनाना है, उसका कायाकल्प करना है। भारत के दीर्घ सांस्कृतिक साहित्यिक इतिहास का समर्थ प्रतिनिधित्व करने वाले नए हिन्दी साहित्यकार सामयिक कुंठाओं और विकृतियों के विष को पचाकर अमृतमयी साहित्य सृष्टि की परम्परा को अक्षुण्ण रख सकेंगे इसका मुझे विश्वास है।

अपना अपना सच

हरिकृष्ण कौल

आप ही बताइए, मैं उसे कैसे पसन्द कर सकता हूं ?

वह बहुत ही बदसूरत है। सौ साल पुराने मिट्टी के उन बेडौल मकानों की तरह जिनमें आज भी निम्न मध्यवर्ग के कश्मीरी र ते हैं । जिन मक नों के कमरे अन्धेरे और सीलन भरे होते हैं। धुएं से काली दीवारों का पलस्तर जहां जगह-जगह उखड़ा होता है। आंगन में कूड़े करकट के ढेर और गन्दे पानी के गढ़े होते हैं। जहाँ बीसवीं शती के इस सातवें दशक में भी मेज कुरसी पर बैठने तथा खाट चारपाई पर लेटने का रिवाज नहीं है। जिन मकानों में रहने वाले फर्श पर ही चटाई बिछाकर बैठते हैं, सोते हैं, राजनीति, धर्म और दर्शन के विषय में लम्बी चौड़ी बातें करते हैं।

क्रूर तो वह है ही। उस पिता के समान जो समझता है कि जन्म देकर ही उसने अपनी सन्तान पर बहुत बड़ा एहसान किया है। और इस एहसान का मनमाना व .ला वसूल करना जो अपना अधिकार समझता है। जिसके अनुसार सन्तान के लिए न कुछ सोचने की आवश्यकता है और न स्वयं कुछ महसूस करने का अधिकार। जो चाहता है कि उसकी खुशी के लिए सन्तान अपनी खुशियों का गला घोंट दे - राम की तरह, श्रवणकुमार की तरह, भीष्म की तरह ।

क्रूर होने के साथ साथ वह जड़ भी है।

उन करोड़ों अधनंगे, अधभूखे लोगों की तरह, पकवानों से भरी दुकानें देखकर जिनके मुंह में पानी नहीं आता है। ऊंचे ऊंचे भवन देखकर जिन्हें जलन नहीं

होती है। बढ़िया पौशाक पहनकर मोटरों में घूमने वाले लोगों को देखकर जिन्हें ईर्ष्या नहीं होती है।

जो कड़कती सर्दी और प्रखर धूप में मीलों पैदल चलकर किसी नेता, महात्मा, या महाराजा का भाषण सुनने आते हैं। भाषण का एक भी शब्द न समझने के बावजूद जो बार-बार तालियां बजाते हैं; गला फाड़ फाड़कर जयजयकार चिल्लाते हैं। किसी महापुरुष के दर्शन मात्र को ही जो अपने जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि मानते हैं। बार बार छले जाने पर भी जिनकी आस्था नहीं टूटती।

और हां, वह पंगु भी है।

वैसा ही पंगु जैसा काफी-हाउस में बैठे बुद्धिजीवियों का क्रोध होता है। ये बुद्धिजीवी मेजों पर मुक्के मारकर वर्तमान व्यवस्था के हर पहलू के प्रति अपना 'विद्रोह' व्यक्त करते हैं। उनका क्रोध और आक्रोश देखकर लगता है कि क्रांति अधिक दूर नहीं है। किन्तु काफी हाउस से बाहर, घर में, आफिस में, युनिवर्सिटी में उनका विद्रोह समझौते में बदल जाता है। उन्हें दीखता है कि सब जगह, सब कुछ ठीक-ठीक चलता है।

वह एक बहुत बड़े झूठ में जी रहा है।

बहुत से लोगों के साथ ऐसा होता है। वह देखिए, उस विशाल चतुर्भुज देवमूर्ति के आगे कितने लोग हाथ जोड़े खड़े हैं। किस प्रकार उनकी आंखों से जलधारा बहती है और कैसा हृदयविदारक है उनका आर्त्तनाद! 'हे प्रभु, अब बहुत हो चुका। तुम्हारे प्रकट होने का समय आ गया है। हम निर्बलों के बल तुम ही हो। प्रभु, हमें दर्शन दो।' मान लीजिए उनका इष्टदेव तत्क्षण ही उन्हें सचमुच दर्शन देता है। वह विशाल देव प्रतिमा हिलने डुलने लगती है और पत्थर में से प्रभु प्रकट हो जाते हैं। कितने लोग सिर पर पांव रखकर भाग खड़े होंगे? कितने भय से बेहोश हो जायेंगे? कितने मर जाएंगे? लेकिन नहीं। ये भक्तजन जानते हैं कि भगवान् कभी दर्शन नहीं देंगे। पत्थर में से कभी भी प्रभु प्रकट नहीं होंगे। देवमूर्ति कभी हिलेगी नहीं। वे आश्वस्त हैं कि कुछ नहीं होगा। फिर भी बड़ी आस्था और श्रद्धा से प्रभु से प्रकट होने की प्रार्थना करते हैं। आर्त्तनाद करते हैं। उनकी आंखों से आंसू बहते हैं।

और कभी कभी वह मुझे बड़ा ही हास्यास्पद लगता है। उस लड़की के आंसुओं की तरह जो विवाह से एक दिन पूर्व अपने प्रेमी की छाती से सटकर फफक-

फफक रोती है—'मुझे क्षमा करना, प्राणेश्वर। इस जन्म में न सही अगले जन्म में हम अवश्य मिलेंगे।' और विवाह की रात पति के चरणों पर गिरकर आसुओं से उसके चरण धोती हुई कहती है—'मुझे अपने चरणों में जगह देना, प्राणनाथ! इस जन्म के बाद अगले जन्म में भी मुझे तुम्हारी दासी बनने का सौभाग्य प्राप्त हो।'

वह बहुरूपिया है। सैकड़ों रूप धारण करके मेरे सामने आता है। परन्तु उसका प्रत्येक रूप अप्रिय है, अरुचिकर है।

अब आप ही बताइए, मैं उसे कै पसन्द कर सकता हूं?

किन्तु मेरे पसन्द करने या न करने से कुछ नहीं होता है। उसका साथ मेरी नियति है।

वह क्रूर है, कुरूप है, जड़ है, पंगु है। मैं उससे घृणा करता हूं मगर फिर भी उससे भाग नहीं सकता। या शायद भाग सकता हूं, पर चाहता नहीं। कहीं साथ रहने के कारण मैं उससे प्रेम तो नहीं करने लगा हूं? सुना है साहचर्य से ही प्रेम उत्पन्न होता है। लेकिन शायद यह प्रेम नहीं, एक मजबूरी है। उसने मुझे कितना सताया है और सलाया है, यह मैं ही जानता हूं।

कभी-कभी उसकी दुष्टता बहुत बढ़ जाती है। उसकी आंखों में वहशीपन नंगा होकर नाचने लगता है। एक हिंस्रक क्रूरता से वह मुझे दबोचता है। उसकी विकराल बाहों के नागपाश से मेरी हड्डियां टूटने लगती हैं। कितना दारुण होता है वह क्षण! लेकिन दूसरे क्षण मैं कुछ और ही अनुभव करने लगता हूं। अरे, यह क्या? उसने तो मुझ में अपना बीजारोपण किया है।

यह बीज धीरे धीरे मेरे भीतर बढ़ने लगता है। उस अत्याचारी के इस दान से न जाने मुझे कैसा मोह हो जाता है। मैं अपना रक्त पिलाकर इस भ्रूण का पोषण करने लगता हूं। और व्यग्रता से उस घड़ी की प्रतीक्षा करने लगता हूं जब मेरा लाडला जन्म लेगा। इस स्थिति में मैं कभी कभी अपने को भी भूल जाता हूं। उस जालिम के 'ऑबसेशन' से भी थोड़े समय के लिए मुक्त हो जाता हूं। मैं मई की उजली दोपहर में लहलहाते गेहूं के हरे पौधों के मध्य उगे 'गुल-ए-लाला' के फूल चुनने लगता हूं। गहरे नीले आकाश में चक्राकार उड़ने वाले श्वेत कबूतर जोड़े की ओर मुग्धभाव से देखने लगता हूं। दक्षिणी योरुप के किसी देश में अंगूरी शराब पीकर समुद्र तट के सुनहरे बालू पर लेटता हूं और धूप की प्यारी गरमी का सुख भोगता

हूं।—कैसे कह सकता हूं कि इन सब बातों का प्रभाव मेरे भीतर आकार पाने वाली मेरी भावी सन्तान पर नहीं पड़ता होगा ?

और कुछ समय बाद वह शुभ घड़ी आ ही जाती है। मेरी सन्तान, एक कहानी जन्म लेती है। मुझे निराले सन्तोष और उपलब्धि का एहसास होता है। मुझे अपना आप उन लोगों से भिन्न दीखता है जो बांझ हैं, निपूत हैं।

मैंने ध्रुव, लव, कुश, भरत आदि तेजस्वी बालकों की कहानियां पढ़ी हैं। पिता से अपनी माता पर ढाए गए जुल्मों का बदला लेने वाले अनेक वीर बालकों के किस्से भी सुने हैं। किन्तु मेरी कहानियां मुझ पर ढाए जुल्मों का बदला मेरे परिवेश से नहीं ले सकतीं। वे उसे बदल नहीं सकतीं, सुधार नहीं सकतीं। मैं उनसे यह अपेक्षा भी नहीं करता हूं। जिस परिवेश को इतने क्रांतिकारी विचारक और नेता नहीं बदल सके, उसे भला मेरी कहानियां कैसे बदल सकती हैं ? इसके बावजूद मुझे अपनी स्वजात कहानियां पसन्द हैं। उन्होंने मेरे निरर्थक जीवन को थोड़ी बहुत सार्थकता प्रदान की। यही क्या कम है ?

काग़ज़ के आंसू

सुभाष भारद्वाज

मैं काग़ज़ हूं
ऐसा
जिस पर
जो आता है
कुछ न कुछ लिख जाता है
और मैं अभागा काग़ज़
अपनी छाती पर लिखे हुए
इन लेखों को
पढ़ भी नहीं सकता
पोस्टर की तरह
इधर उधर
यहां वहां
घूमता फिरता हूं
और लोग
इन लेखों को पढ़ कर
मुझ काग़ज़ को
गालियां देते हैं, नोचते हैं

जैसे यह सब
खुद मैंने ही लिखा हो
लेकिन
भला कोई सोचे तो
मैं बेचारा काग़ज़
एक साथ
काग़ज़ और लेखक
कैसे हो सकता हूं ?

कश्मीरी-कहानी

पापी पुजारियों की सन्तान

अली मोहम्मद लोन

इस बूढ़े से मुझे कितनी नफरत है !

"तुमने कल्हण की 'राजतरंगिणी' पढ़ी है ?"

"नहीं, केवल नाम सुना है।"

"राजतरंगिणी में श्रीनगर के सभी ऐतिहासिक मुहल्लों का उल्लेख है। हमारे मुहल्ले का नाम भी उसमें मिलता है...।"

यह बूढ़ा कितनी विद्वता बघार रहा है !

"कहते हैं, गोरीबल से कुछ ही दूर देवी का मन्दिर था। और मन्दिर के पुजारी अपनी परम्पराओं और संस्कारों का पालन करने के लिए कोई भी बलिदान कर सकते थे। पर तुम जानो, मनुष्य पुजारी हो या गृहस्थ, है तो मनुष्य ही। देवी के स्थापन में कुछ पुजारी संस्कारों का पालन न कर पाये—उन्होंने प्याज़ खा लिया"।

यह बूढ़ा व्यर्थ इधर उधर की हांक रहा है। लगता है, आज भी मतलब की बात न हो सकेगी। मुफ्त में चाय पिलानी पड़ी।

अब कोई पूछे इससे कि मुझे प्याज खाने या न खाने में क्या दिलचस्पी हो सकती है।

प्याज़ उस ज़माने में बुरी चीज़ समझी जाती थी—विशेषकर देवी के उपासकों के लिए और भी बुरी । पर उन्होंने प्याज़ खा लिया । फिर एक सभा हुई जिसमें पापियों को दण्ड दिया गया ।

मुसलमान हो कर भी बूढ़ा हिन्दुओं की तरह संस्कृत बोल रहा है । हद है !

"उन्हें देश-निकाला हुआ । देश-निकाला, जानते हो, क्या होता है ? मेरा मुंह क्या देख रहे हो । जवाब दो, तुम तो पढ़े-लिखे हो । शहर के सम्भ्रान्त व्यक्तियों में तुम्हारी गणना है । बड़ी-बड़ी पार्टियों में जाते हो । बतलाओ, देश-निकाला..."

कुछ ।"

"तुम्हें मेरी बातों से उलझन हो रही है ना । लेकिन ये बातें अत्यन्त आवश्यक हैं । देखो, अब तो तुम हमारे इलाके में आ बसे हो और जिस इलाके में भी आदमी रहे, उसका इतिहास जानना तो थोड़ा-बहुत जरूरी ही है ।"

आग लगे इतिहास को, मेरे गेरेज का क्या होगा ।

"हां, तो देश-निकाले की बात कर रहा था । देश-निकाला होता है मुल्क-बदर करना या सीधी-सादी भाषा में घर से बेघर करना । तो इन पुजारियों को घरसे बेघर कर दिया गया । उन्हें मन्दिर की पवित्र स्थली से निकालकर इस भूमिपर बसाया गया, जहां इस समय हम-तुम बैठे हैं । यह स्थान तब था भी क्या ! यह सुलेमान का पर्वत था एक ओर और इस ऊबड़-खाबड़ भूमि का दूसरा छोर डल झील तक फैला हुआ था । सर्दियों में झीलका पानी कम हो जाता तो थोड़ी सी ज़मीन निकल आती । गर्मियों में झीलका पेट फूल जाता तो यही ज़मीन फिर पानी से भर जाती । बस, समझो, आगे खाई, पीछे पहाड़ वांला किस्सा था । लेकिन पुजारियों की सन्तान बड़ी परिश्रमी निकली । उन्होंने सुलेमान पर्वत पत्थरों और मिट्टी से झीलका यह किनारा पाट दिया और वर्षों के कठिन श्रम के पश्चात् उन्होंने यहां से गोरीबल तक धरती का एक बहुत बड़ा टुकड़ा खेती-बाड़ी के योग्य बना लिया । धान और मक्काकी काश्त आरम्भ कर दी । आबादी कम थी और धरती अधिक, इसलिए उन्होंने शेष भूमिपर बाग़ लगाये—सेबों, नाशपातियों और अंगूरों की वाटिकाएं...।"

उफ, यह आदमी कितना बोर कर रहा है !

"अरे, तुमसे एक बहुत जरूरी बात कहना तो मैं भूल ही गया ! उन्हें यह भी कहा गया था कि गोरीबल से इधर का रुख न करें। पुजारियों को देवी के छूट जाने का दुःख तो था पर तुम जानो, जिस प्रकार आदम और हव्वा जब स्वर्ग से निकलकर धरती पर उतरे तो उन्होंने इतनी बड़ी दुनिया बसायी, उसी प्रकार इन पुजारियों ने भी एक छोटा सा संसार यहां बसाया और जानते हो, सबसे पहले उन्होंने जो वस्तु ज़मीन में बोयी,वह क्या थी ?"

"प्याज़ होगा !"

"अरे हां, प्याज़ ही था। फिर एक विचित्र घटना घटी।"

"क्या ?"

"बेदों के पेड़ आये तो कहीं से कस्तूरा और पोशनूल उड़कर आ गये और उन्होंने पेड़ोंमें घोंसले बना लिये। सेबों और नाशपातियों के पेड़ों पर शगूफे छिटके तो जाने कहां से मधुमक्खियों की रानी आ गयी। खेतों में धान और मक्काकी बालियां लहराने लगीं तो जानते हो क्या हुआ ?"

"कहीं से रीछ आ गया होगा या गीदड़।"

"नहीं। वह जो सुलेमान की ऊंची चोटी है ना जिस पर अब मन्दिर है, वहां मृगटोलियों का नृत्य होने लगा। यह सब हुआ तो पुजारियों को इस प्रदेश से इतना प्रेम हो गया जितना पहले उन्हें देवी के मन्दिर से था। और यह प्रेम हज़ारों वर्ष व्यतीत होने के बाद भी वैसा ही है। इस प्रदेश की एक-एक इंच भूमि से इन्हें प्यार है।"

हां, जभी तो कौड़ियों के मोल बेच रहा है। यही हालत रही तो एक दिन सालों को एक बार फिर देश-निकाला मिल जायेगा और इस प्रदेश पर हमारा अधिकार होगा। हमारा, जिनके पास कारें हैं, कोठियां हैं, बैंक बैलेन्स हैं, कॉन्वेण्ट की शिक्षा है, क्लबों और होटलों का जीवन है। और तुम लोग नाली में रेंगने वाले कीड़ों की तरह हमारे छोड़े हुए महल्लों में जा बसोगे। लेकिन यह बूढ़ा सिर्फ़ अपने मतलब की बात ही किये जा रहा है और मेरी बात गोल हो रही है। और यह न माना तो मेरे आउट-हाउस और गेरेज का क्या होगा !

"यद्यपि इस प्रदेश के तीन चौथाई भागपर अब तुम्हारे वर्ग का अधिकार है

मुझे डर है कि कहीं पुजारियों की सन्तान को एक बार फिर देश-निकाला न मिल जाए।"

"अरे कहां ! यह जरा-सी ज़मीन तो खरीदी है मैंने।"

"तुम्हारी नहीं, तुम्हारे भाई-बन्दों की बात कर रहा हूं। तुम तो मेरे भाई समान प्यारे मित्र मुहम्मद सुल्तान के बेटे हो, मेरे भतीजे हो।"

वाह अब्बाजान ! तुम्हारा भी जवाब नहीं ! मरकर भी काम आ रहे हो !

"सुनो, शुरू में हम से कुछ भूले हो गयीं। तुम जानो जिस जगह गुल मुहम्मदने कोठी बनायी है, वहां क्या था पहले ?"

"नहीं।"

"वहां एक मैदान था। हम-सब उस मैदान में खेल-कूद कर जवान हुए। हमारे मवेशी उसी मैदान की घास खाकर स्वस्थ रहते थे। एक ओर लड़के बाल, फुट-बाल और कबड्डी खेला करते थे और दूसरी ओर हमारी माएं-बहनें और बेटियां धान सुखाती और कूटती थीं और ईद के दिन-नाचती थीं। अब हमारे बच्चे गली कूचों में धूल और कीचड़ में खेलते हैं। हमारे मवेशी कमज़ोर होकर मर रहे हैं। हमें अच्छा दूध नहीं मिलता और हमारा स्वास्थ्य बिगड़ रहा है। हमारे बच्चों की सूरत देखो... परसों तुम्हारा लड़का...क्या नाम है उसका...?"

"पिंकी।"

"हां, वही, तुम्हारी ड्योढ़ी से निकल कर गली में आ गया और हमारे बच्चों के साथ खेलने लगा। तुम जानो हमारे बच्चों के पास खिलौने नहीं। बस, कोई टीनका डब्बा उठा लिया, उसे बजा लिया और खिलौना हो गया या कुम्हारों के यहां से कोई मिट्टी का छोटा सा कूज़ा उठा लिया और उससे खेलने...क्या नाम है तुम्हारे बेटे का...?"

"पिंकी।"

"हां, पिंकी हमारी बच्ची राजा से डोली और दुल्हन का खेल खेलने लगा। मुझे बड़ी खुशी हुई कि तुम्हारा लड़का हमारे बच्चों के साथ घुल-मिल गया है। जाने

किस बातपर दोनों ने ज़ोर-ज़ोर से ताली बजायी, अन्दर ड्योढ़ी में से तुम्हारी बड़ी लड़की क्या नाम है उसका...?''

''बबली !''

''हां, बबली निकल आयी। उसने पिंकी को कान से पकड़कर घसीटना शुरू किया। मेरी राजा डरकर भाग आयी। उसके हाथ से मिट्टी का कूजा गिरा और टूट गया। तुम्हारी बबली पिंकी को घसीटते हुए कह रही थी—''

हाय, यह बूढ़ा जाने अब क्या कह देगा ! मेरे ही घर में बैठकर मेरे बच्चों की बुराई कर रहा है !

''सुनते हो, क्या कहा ?''

''क्या ?''

''कहा कि इन गन्दे बच्चों से क्यों खेलते हो ! बीमार हो जाओगे। मुझे बबली की बात पर ज़ोर की हंसी आयी।''

हां, वैसी ही हंसी, वैसी ही मनहूस हंसी। तुस हंसते हो तो तुम्हारी मुंह एक जीर्ण कब्रकी तरह खुल जाता है। आंखें झुर्रियों में ऐसी डूब जाती हैं जैसे सांप मणि निगल जाता है। सिर ऐसे डोलता है जैसे किसी तूफ़ान में घिरी नाव डोलती हो।

''मुझे ज़ोर से हंसी आयी और बबली डरकर ड्योढ़ी में चली गयी। मैंने सोचा कि तुम्हारी बेटी भी तो कश्मीरी ही है, फिर उसने यह क्या कह दिया !''

''बात असल में यह है कि बबली कान्वेण्ट में पढ़ती है और वहां सफ़ाई का बहुत खयाल रखते हैं।''

''जानता हूं...जानता हूं, लेकिन सफ़ाई का यह मतलब तो नहीं कि तुम कश्मीरी नहीं !''

यह बूढ़ा कैसी जिरह कर रहा है !

''बोलो, जवाब दो।''

''क्यों नहीं रहे कश्मीरी ? असल बात यह है कि कांन्वेण्टवाले जाने क्या ग़लत-

सलत शिक्षा देते हैं। पढ़ाते हैं अंग्रेज़ी में। परिणाम यह होता है कि हमारे बच्चों को अपनी भाषा घटिया नज़र आने लगती है।"

"वाह, जो लोग अपनी भाषा को घटिया समझते हैं, वे अपने लोगों को भी घटिया समझें तो आश्चर्य नहीं होना चाहिये। देखो, नाराज़ मत होना। मुहम्मद सुल्तान से मेरे सम्बन्ध भाइयों सरीखे थे इसीलिए तुमसे कह रहा हूं, वरना गुलमुहम्मद के लड़के होते तो विष का घूंट पीकर चुप हो जाता।"

"मुझे ख़ेद है, बबलीने ऐसी बात की।"

"अरे, बबली तो मेरी अपनी पोती है। उससे मुझे कोई गिला नहीं और फिर बच्चों से कैसा गिला। जो बड़ों से सुनते हैं, वही दोहराते है। किसी ने ठीक ही कहा है, बच्चे बन्दरों के समान होते हैं।"

"ख़ुदा गवाह है। मैंने कभी ऐसी बात सोची भी नहीं।"

"उफोह, तुम तो बार-बार परेशान हो जाते हो ! बेटा, तुमसे मुझे कोई शिकायत नहीं।"

शिकायत नहीं भी है और है भी...कितना डिप्लोमैट है यह बूढ़ा !

"अच्छा, हटाओ, कोई और बात करें। यह बताओ, काम-काज कैसा चल रहा है तुम्हारा इन दिनों ?"

'अल्लाह का फ़ज़ल है। फ़ैक्टरी खोलना चाहता हूं।"

"कहां ?"

"पहले तो इरादा यहीं का था। घरके पास। पर यहां जमीन नहीं मिलती और मिलती है तो कीमत बहुत मांगने लगे हैं अब।"

"पता नहीं, इतना बड़ा संसार लोगों पर दिन-प्रतिदिन तंग क्यों होता चला जा रहा है।"

"आबादी बढ़ गयी है पहले से।"

"नहीं...नीयत खराब हो रही हैं सबकी। अधिकाधिकपर अधिकार कर औरों को अभावग्रस्त और भिखारी बनाने के प्रयत्न में हम लोग जुटे हैं। हर कोई ज्यादा से ज्यादा पैसा कमाना चाहता है, ज्यादा से ज्यादा जायदाद चाहता है। पर ऐसे लोग बहुत कम हैं-गिनती के।"

"कितना जागरूक है यह बूढ़ा! कार्ल मार्क्स का साला!"

"पर देख लेना, खुदा की लाठी बेआवाज़ होती है। एक दिन यही लोग सबके सब मारे जायेंगे। आखिर कहां तक इनकी लालसा इनका साथ दे सकेगी! आखिर लोग कहां तक अपने अभावों को सहन करते रहेंगे! हमारे इतिहास में भी ऐसे दिन कई बार आये हैं। खुदा वह दिन अब न दिखलाये।"

यह बूढ़ा कितना बुद्धिमान है

"कल मस्जिद में एक मुल्ला आया था। वह वर्तमानयुग को इतिहासका निकृष्टतम युग बतला रहा था। कह रहा था जितने अनर्थ और अत्याचार इस युग में हो रहे हैं, वे शायद ही कभी हुए हों। लोग सदाचार का मार्ग त्यागकर लालच और अत्याचार की राह पर चल रहे हैं और एक तूफान आने वाला है।"

"कैसा तूफान?"

"एक खुदाई कहर!"

"अरे हां, याद आया, मस्जिद की छत तो अब गिरने ही वाली है। इसकी मरम्मत क्यों नहीं करवाते आप लोग? कहिए तो मैं करा दूं यह काम।"

"नमाजी नहीं रहे, फिर मस्जिद की छत नहीं टूटेगी तो और क्या होगा!"

यह बूढ़ा मेरे सीधे सवाल का उल्टा जवाब दे रहा है।

"मैं चन्दा करा रहा हूं। आशा है, बर्फ गिरने से पहले ही छत की मरम्मत का काम पूरा हो जायेगा।"

"मैं भेज दूं कारीगर? कल ही। आजकल बेकार हैं।"

"तुम!"

"हां, पैसे की कोई चिन्ता नहीं, उसीका दिया बहुत है।"

"अरे, तुम क्यों करोगे इतना कष्ट ! मैंने पैसा जमा कर लिया है। बस, मसाला डलवाने की देर है। और मस्जिद तो खुदा का घर है, इसके बनाने में तो सब का हिस्सा होना चाहिये।"

क्या सफाई से टाल गया कमबख्त !

"अरे, यह कोर्ट काहे का है ?"

"बैडमिण्टन का।"

"फिर कोई खेलता क्यों नहीं ?"

कैसे खेले कोई ? बबली जब कोर्ट में उतरेगी तो तुम लोग खिड़कियों में झूल-झूल जाओगे। दीदे फाड़ फाड़कर उसे बोर करोगे।

"क्यों भाई, कोई खेलता क्यों नहीं बैडमिण्टन।"

"वह...वह बात यह है कि बच्चे आजकल परीक्षा की तैयारियों में लगे हैं और फिर यहां पर्वत की ढलान पर हवा भी तेज चलती है और 'शटल-काक' किसी ढर्रे पर रहती ही नहीं।"

"शटल-काक ? तुम्हारा मतलब 'चिड़ी' से है ना ?"

"हां।"

"अरे हां, हवा तो यहां बहुत तेज चलती है। तुमने बेदों की किसी वाटिका में देखा है कि हवा कैसे शाखों में सन्तूर बजाती है ?"

"सन्तूर ? वह कैसे ?"

"अरे,हवा शाखाओं से उलझती है तो सन्तूर के तार अपने आप बज उठते हैं।"

यह बूढ़ा कितना बातूनी है।

"तुम्हारा क्या ख्याल है ?"

"मेरा कोई ख्याल नहीं। यह सब कहने की बातें हैं, वरना हवा कैसे सन्तूर बजा सकती है।"

"हां, यह कहने की बातें ही हैं। लेकिन हमें ऐसी बातों से बहुत प्यार

है। हम यही बातें हजारों सालों से सुनते आये हैं...तब से जबसे हमें देवी के मन्दिर से निकाला गया था। एक बात कहूं.....?"

"क्या ?"

"नाराज तो नहीं होगे ?"

"नहीं।"

"तुम लोग" —

यह बूढ़ा रुक क्यों गया। क्या कहने जा रहा है यह अब।

"भई, तुम मेरे अज़ीज हो। इस लिये तुमसे कहने में कोई हर्ज नहीं। मैंने एक बार शहतूत के पेड़ के साथ अंगूर की बेल लगा दी। बेल बढ़ते-बढ़ते शहतूत के पेड़ पर जा चढ़ी। उसकी शाखाओं में झूलने लगी। जब अंगूरों के गुच्छे कानों में पड़े झुमकोंकी तरह झूलने लगे तो मैंने देखा, धीरे-धीरे शहतूत के पेड़ की फसल कम हो गयी है और फिर नौबत यहां तक आ पहुंची कि चूंटियों ने शहतूत का गुदा तक चाट लिया और एक दिन आंधी में यह पेड़ ऐसे गिरा जैसे किसी नवयुवक पर राह चलते-चलते अचानक बिजली गिर जाये।"

यह बूढ़ा किस बात की तरफ इशारा कर रहा है !

"और वह अंगूर की बेल जीवित थी। उसे हमने एक और सहारे पर खड़ा कर दिया। अब भी उसमें अंगूरों के गुच्छे झूलते हैं। परन्तु मुझे उससे घृणा हो गई है।"

"क्यों !"

"क्योंकि इसने एक जान ली और स्वयं जीवित रही।"

"लेकिन इस कहानी का हमारी बात से क्या सम्बन्ध है।"

"यही तो बतलाने जा रहा था। यह नये लोग यहां आकर बस गये हैं न, मुझे अंगूर की यही बेल नजर आते हैं।"

"क्या !"

"अरे, तुम नहीं भाई ! बाकी लोग। तुम तो मेरे भतीजे हो। मेरे स्वर्गवासी मित्र के इकलौते।"

"प्यारे अब्बाजान, इस बूढ़े को समझाओ, वरना मेरी यह कोठी इस की यह वाटिका और यह आलीशान ड्योढ़ी, सब बेकार हैं। इस कमबख्त ने जमीन का यह

टुकड़ा न दिया तो मुझे हमेशा गन्दे नाले की ओर से आना पड़ेगा। मेरी कार हमेशा सड़क पर ही खड़ी रहेगी और बच्चे इसके शीशे तोड़ते रहेंगे। यह मान जाये तो गेरेज भी बन सकता है और आउट-हाउस भी।

"तुम्हारी बबली का कोई दोष नहीं। गुलमुहम्मद के बच्चे भी हमारे बच्चों के साये से दूर भागते हैं। यह लोग जो कल तक हमारी तरह खाक में लोट रहे थे, युग के एक नये पैंतरे के साथ लखपति बन गये हैं और यह लोग लखपति बनकर ही रहना चाहते हैं और इसीलिये जब यह लोग हमारे बच्चों को धूल में लथ-पथ देखते है, तो इन्हें अपना बचपन याद आ जाता है। यह लोग हमारे साये से भी डरते हैं क्योंकि हमें देख-कर इनका यह अहसास जाग उठता है कि कभी यह भी हम जैसे ही थे। और इस कल्पना से भयभीत यह लोग चाहते हैं कि संसार में जैसे लोग मिट ही जायें और इसी लिये यह लोग मस्जिद की मरम्मत कराना चाहते हैं।"

यह कमीना साफ मेरी तरफ इशारा कर रहा है।

"और कभी हमें अपने घरों के बरामदे में बैठकर मीठी-मीठी बातें सुनाते हैं।"

उफ, यह तो गोद में बैठ कर दाढ़ी नोचने पर तुला है। नमक हराम!

"लेकिन हमसे अब और भूलें न होंगी। इस प्रदेश के लोग अब एक एक इन्च धरती को छाती से लगाकर रखेंगे क्योंकि उन्होंने इस इलाके का इतिहास बनाया है। देवी हमसे क्रुद्ध है और अब एक नयी आफत का सामना है। पर यह तुम्हारी लड़की है न...क्या नाम है उसका...?"

"बबली।"

"हां बबली, देखो तो, मुझे देखकर कितनी घृणा से मुंह फेर कर चल दी।"

उफ, मौत के साये की तरह यह बूढ़ा आज किस तरह मुझपर सवार है!

"देखो, कैसे भाग गई! जैसे मैं कोई भूत हूं। अच्छी शिक्षा मिलती है कान्वेण्ट, में, अच्छी सभ्यता लेकर आये हो तुम लोग यहां।"

"नादान बच्ची है, वरना..."

"वरना क्या?"

"बात यह है कि कान्वेण्ट की शिक्षा ही ऐसी है, कभी-कभी तो बबली मुझ से भी बेतुकी बातें करने लगती है। कल रात मैं गुलाम मुहम्मद की 'छकरी' का कार्यक्रम रेडियो से सुन रहा था। बबली आई और रेडियो की सूई घुमाकर सीलोन पर रख गई जहां से नयी फिल्मों के गीत सुनाये जा रहे थे, पर मजबूरी है। दूसरे स्कूलों में अच्छी शिक्षा का प्रबन्ध नहीं और कान्वेण्ट में सफाई और पढ़ाई, दोनों का ही ख्याल रखा जाता है।"

"और अच्छी सभ्यता...।"

"जी।"

"मेरे अजीज, सभ्यता तो एक धारा है। अपने इतिहास, अपनी परम्पराओं और अपनी संस्कृति का बिम्ब और सभ्य होने का अर्थ है..."

"आपकी बातें अब बरदाश्त से बाहर हो रही हैं। इनसे नफरतकी बू आती है।"

"इसमें मेरा कोई दोष नहीं, तुम लोगों का व्यवहार ही कुछ ऐसा है।"

"हमसे पहले भी बहुत से लोगों ने यहां जमीनें खरीद कर बंगले बनाये थे।"

"पर मेरे अजीज, वे लोग हमारे नहीं थे। वे मुहम्मद सुल्तान के बेटे नहीं थे। तुम जानो मुहम्मद सुल्तान ने कभी मुझे गैर नहीं समझा। लेकिन तुम्हारे तो बच्चे भी हमारे बच्चों को गैर समझते हैं। तुम हमें गैर समझते हो यद्यपि हमारी भाषा, हमारा रहन-सहन, हमारी सभ्यता और हमारा इतिहास एक है।"

"मैंने कभी भी आपको गैर नहीं समझा, वरना आप इस समय मेरे घर में नहीं होते।"

"जानता हूं, मैं यहां क्यों हूं।"

"क्यों?"

"इसलिए कि.....खैर, हटाओ!"

यह बूढ़ा बात करते करते रुक क्यों गया। यह क्या जानता है?

"अच्छा, अब चलूं। तुम यहाँ नए-नए आए हो, किसी चीज की जरूरत हो तो नौकर भेजकर मंगवा लेना या आवाज दे देना, हमारे बच्चे दे जायेंगे।"

"लेकिन आपसे एक जरूरी बात·····"

"जानता हूं पर तुम मेरा फैसला सुन चुके हो।"

"मैं मुंह मांगा दाम दूँगा।"

"इसकी आवश्यकता नहीं। तुम लोग हर चीज को पैसे की तराजू में तौलते हो। और तो और तुम्हारे नजदीक मनुष्य के प्यार का भी मूल्य है। मैं तुम्हें जमीन का वह टुकड़ा भेंट करने आया था। परन्तु अब मैंने अपना निश्चय बदल दिया है। जब मैं चाय पी रहा था तो मैंने तुम्हारी आंखों में पढ़ा, तुम सोच रहे थे कि चांदी की चमक से मेरी आंखें चौंधिया जायेंगी और चाय पीते-पीते ही मैंने अपना फैसला बदल दिया।"

"तो क्या फिर·····"

"नहीं।"

"लेकिन आप जा क्यों रहे हैं?"····· चला गया कमीना नमकहराम। अब क्या होगा? मेरा गेरेज! मेरा आउट-हाउस! भेंट देने आया था·····नाली का कीड़ा। थू है इस पर, इसके इतिहास और सभ्यता पर! हमारे मुंह लगता है। मेरा बस चले तो इसके सारे अतीत और इतिहास में आग लगा दूं। फिर किसी को राख के ढेर में कोई निशान भी न मिल सके।

एक चीखता हुआ बिम्ब

शशि शेखर

मैं जानता हूं
कि वे सभी पुल तोड़ दिए गये हैं
वे सभी मार्ग
किए गये हैं अवरुद्ध
जो मुझे इस अंधी-घाटी से बाहर
कथा के उस संदर्भ तक पहुँचाते
जहाँ मैं अपना नायक आप होता हूँ।
और मैं धकेल दिया गया हूँ
एक चीखते बिम्ब-सा
कुहासे की परतों में घड़क रहे
इस अजीब दृश्य में।
नहीं मैं इस कड़ुवे परिवेश में
घुलनशील नहीं !
मैं इन अंधेरी परतों से तैरकर
बाहर आने को छटपटा रहा हूँ !

सभी पुल टूट गए हैं.
सभी मार्ग अवरुद्ध हैं,
और मैं एक चीखते हुए बिम्ब-सा
इस दृश्य में धकेल दिया गया हूँ !

यद्यपि यहां भी हैं सभी के
सफ़ेद-बर्फ़ सी आदिम हँसी हँसते हुए
अपने-अपने पर्वत शिखर
यहाँ भी चीड़ों के बीच
हर शाम उतरता है एक हरा संगीत
जिसकी लय पर थिरक उठती है
जानी-अनजानी कोई गंध !
एक उजली नदी
दो मधुर ओठों पर मुस्कानें उछालती—
बहती है
मगर कुछ नहीं कहती !
मगर मैं आदिम बर्फ़ से ढका हुआ
वह शिखर नहीं हूँ,
मैं वह संगीत भी नहीं हूं,
वह उजली नदी भी नहीं !
क्योंकि मैं जानता हूं उस तीखे विष को
जो हर शाम उतर आता है
और जिसके छूते ही
ये शिखर, यह संगीत, यह नदी
सभी मर जाते हैं
और उनकी मृत्यु मुझे चुपचाप
ढोनी पड़ती है !

आज की रात
(सुनता हूं)
एक जोरदार तूफ़ान आने वाला है ।
चीड़ के हरे वृक्ष आशंका से थर-थर हैं ;
भूरी चट्टानें भय से दांत किरकिरा रही हैं;
सड़कों और मकानों की रीढ़ में भी
एक अजीब त्रास की सुरसुरी
रेंग रही है !
आज की रात एक भयंकर तूफ़ान
आने वाला है !

शायद आसमान के चहकते हुए रंग
मृत पक्षियों - से धरा पर गिर पड़ें !
मगर मैं भयभीत नहीं
इस अंधेरे सीमान्त पर एक दीवार से—
सटा हुआ
मैं प्रतीक्षा में हूँ
कि कब वह ख़ूँख्वार वनैला पशु
मुझें सूँघता हुआ आयेगा
और मेरे पिण्ड के चीथड़े-चीथड़े कर देगा
और मैं इस अंधी घाटी के परिवेश से
मुक्त हो जाऊँगा
ज़ैसे पहाड़ी पर से लुढकता हुआ
पत्थर !

पर शायद यह तूफ़ान भी
महज़ एक खुशनुमा झूठ हो ।
शायद यह प्रतीक्षा भी जायेगी व्यर्थ !
मुझ से क्यों किसी ने [किसने ?]
कहा था
कि इन अंधेरों में भी
अनार के फूलों-सा
चमक सकता है
कोई अर्थ !

डोगरी और पुञ्छी
का
तुलनात्मक अध्ययन

सत्यपाल शास्त्री

डोगरी का क्षेत्र मोटे तौर पर जम्मू नगर से पश्चिम की ओर बहने वाली चनाव नदी से लगभग ५० मील पश्चिम मे बहने वाली तवी नदी से कुछ आगे तक, उत्तर की ओर रामवन, उत्तर पूर्व भद्रवाह, पूर्व की ओर चम्बा, पूर्व दक्षिण की ओर कांगड़ा में धर्मशाला तक और दक्षिण में जिला गुरदासपुर और सियालकोट के उन भागों तक जो जम्मू प्रांत की सीमा के आस-पास हैं, (जो अब पाकिस्तान में हैं) तक हैं। इसी प्रकार पुञ्छी जो डा० ग्रियसेन के अनुसार लहंदी के उत्तर पूर्वी रूप पुठोहारी के उपरूप चिमाली का स्थानीय नाम (थोड़े परिवर्तित रूप में) है—का क्षेत्र भूतपूर्व पुञ्छ रियास्त (जिसकी चार तहसीलों—बाग, सुधनोती, हवेली और म्हेंडर में से बाग और सुधनोती सम्पूर्ण और हवेली और म्हेण्डर का अधिकांश भाग अब पाकिस्तान के कब्जे में है और शेष भाग जम्मू-कश्मीर राज्य में है) का सम्पूर्ण प्रदेश है।

डोगरी और पुञ्छी भाषी प्रदेशों की सीमाएं परस्पर मिलने के कारण इन प्रदेशों के राजनैतिक, धार्मिक सामाजिक और आर्थिक (व्यापारिक) सम्बन्धों के आदान-प्रदान के कारण इन दोनों के सम्बन्धों एवं विकास परम्परा पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता रहता है। यद्यपि भर्त्तहरि ने भाषा के विकास में उत्पत्तिवाद, अनुकरणवाद, अनुमानवाद एवं व्याकरणात्मक उत्पत्ति में से किसी एक को भी कारण नहीं माना है तो भी उन्होंने भाषा के विकास में लोक प्रसिद्धि एवं स्वानुभूति को तो कारण माना है। एक भाषा का दूसरी पर प्रभाव एवं भाषाओं के पारस्परिक आदान-प्रदान को भी अवश्य

स्वीकार किया है। इसी भाषाई आदान-प्रदान के कारण डोगरी और पुञ्छी में विषमता की अपेक्षा समता अधिक है। असमानता केवल स्थानीय प्रभाव एवं लहजे के कारण है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी दोनों एक ही परिवार से सम्बन्धित हैं।

डा० ग्रियर्सन ने डोगरी को पंजाबी की उपभाषा माना है और उन्हीं के कार्य को आदर्श मानकर कार्य करने वाले कई भारतीय विद्वान भी उसे पंजाबी का ही उपरूप मानने लग पड़े हैं। हां, कुछ स्वतन्त्र राह पर चलने वाले अनुसन्धित्सु डोगरी का विकास स्वतन्त्र रूप से मानते हैं।

डोगरी के उत्तर में रामबनी और पोंगुली बोलियां बोली जाती हैं, पूर्वोत्तरी भाग में (नाला रग्गी के पार डोडा के पास) भद्रवाही, भलेसी और पाडरी [पांगी और किश्तवाड़ के मध्यवर्ती पाडर प्रदेश में बोली जाने वाली] पूर्व में चम्पाली वर्ग की बोलियां बोली जाती हैं। इसी प्रकार डोगरी और चम्पाली के मध्य भटेयाली बोली जाती है। इधर उत्तर में भद्रवाह, रामबन और डोगरी भाषा के प्रदेश की मध्यवर्ती लम्बी पर्वत शृंखला में बसने वाले लोगों में खसाली, गोजरी और पहाड़ी बोलियां प्रचलित हैं। ये सभी बोलियां डोगरी से सम्बन्धित हैं एवं डोगरी की उपबोलियां हैं। सभी शब्द समूह, ध्वनियों और वाक्य विन्यास की दृष्टि से डोगरी के साथ बहुत अधिक समानता रखती हैं, बल्कि यदि यूं कहा जाए कि ये डोगरी का ही उपरूप हैं तो अत्युक्ति न होगी। डोगरी के दक्षिण-पूर्वी भाग में कांगड़ी और कण्डियाली बोलियां बोली जाती हैं, जो डोगरी का स्थानीय प्रभाव के कारण बदला हुआ उपरूप है। डा० ग्रियर्सन के पदचिन्हों पर चलने वाले विद्वान भले ही डोगरी को कांगड़ी से पृथक् मानें पर वास्तव में डोगरी और कांगड़ी अलग-अलग नहीं हैं।

प्रसिद्ध भाषाशास्त्री डा० सिद्धेश्वर वर्मा का कहना है—'प्रतीत तो यह हो रहा है कि वर्तमान डोगरी एक बहुत विशाल-भाषा का भग्नावशेष है। इन अवशेषों के समर्थन इतिहास से भी मिल सकते हैं।' अपने मत की पुष्टि में वह डा० ग्रियर्सन के भाषा सर्वेक्षण की भूमिका के प्रथम पृष्ठ का उदाहरण देते हुए लिखते हैं—'कवि अमीर खुसरो ने भारत की बोलियों की जो सूची दी थी उसमें दिल्ली की भाषा के पश्चात् डुग्गर की भाषा का स्थान था। पञ्जाबी का नाम तक नहीं था। इसी प्रकार अंग्रेजी राज्यकाल में पादरी केरी (Carey) ने उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वी भाग में इसी प्रकार की सूची बनाई थी। उसमें भी इसी प्रकार दिल्ली की भाषा के बाद डोगरी भाषा का स्थान माना था।'

डा० ग्रियर्सन के आंकड़ों के अनुसार डोगरी बोलने वालों की संख्या इस प्रकार है—

जम्मू प्रांत = ४३४००
स्यालकोट = ७४७२७
गुरदासपुर = ६००००
कांगड़ी = ४३६५००
कण्डियाली = २००००
भटियाली = १४०००

कुल = ६४८६२७

यह आंकड़े १९०२ की जनगणना के आधार पर हैं।

इसी प्रकार पुञ्छी भी चिमाली के विशाल क्षेत्र के मध्यवर्ती और पश्चिमी भाग में बोली जाने वाली भाषा है। पुञ्छी का विकास भाषाओं और बोलियों के विचित्र संगम से हुआ है। चिमाली, डोगरी, कश्मीरी, पुठोहारी, लंहदी और पञ्जाबी सभी से योगदान प्राप्त करके भी पुञ्छी अपनी स्थानीय विशेषताओं को लेकर ही विकसित हुई है, जैसा कि किसी भी भाषा के विकास के विषय में भाषा शास्त्रियों का विचार है।

पुञ्छी और चिमाली का बहुत थोड़ा अन्तर है। इन की परस्पर बड़ी समानता है। क्या शब्द समूह और क्या व्याकरण हर बात में पर्याप्त समानता है। इन दोनों पुञ्छी और चिमाली के दक्षिण-पश्चिम और दक्षिण-पूर्वी भाग में पंजाबी का विशाल क्षेत्र होने के कारण इस पर पंजाबी का भी प्रभाव है।

इस प्रकार चिमाली का पुञ्छी रूप दक्षिण में पंजाबी और उत्तर में कश्मीरी से प्रभावित तो है ही, पर पश्चिम में पुठोहारी और पूर्व में डोगरी के शक्तिशाली प्रभावों ने भी इस पर अपनी गहरी छाप छोड़ी है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए यदि हम पुञ्छी को ठीक प्रकार से जांचने-परखने के लिए एवं डोगरी के साथ इसकी तुलना करने के लिए इसे दो भागों (पुञ्छी का पूर्वी रूप जो डोगरी के अधिक निकट है और पश्चिमी रूप जो पुठोहारी से प्रभावित है)में विभक्त करदें तो जहां पुञ्छी का भाषा वैज्ञानिक तौर पर अध्ययन करने में सुविधा होगी वहां डोगरी के साथ इसकी तुलना बड़ी सुगमता से हो सकती है। इसी तथ्य को सामने रख कर लेखक ने पुञ्छी को "केन्द्रीय पुञ्छी" और "पहाड़ी पुञ्छी" नामक दो भागों में विभक्त किया है।

मोटे तौर पर म्हाड़ा (पुञ्छ नगर से लगभग ६२ मील पूर्व) से लेकर दौरांदी (पुञ्छ नगर से लगभग १२ मील पश्चिम की ओर) तक केन्द्रीय पुञ्छी बोली जाती है और दौरांदी ककूटा आदि स्थानों से लेकर जेहलम नदी (यह सम्पूर्ण प्रदेश अब पाकिस्तान के अधिकार में है) तक पहाड़ी पुञ्छी बोली जाती है।

केन्द्रीय पुञ्छी के प्रदेश में यत्र-तत्र रहने वाले मुस्लमान गुज्जर गोजरी, पुञ्छ नगर में रहने वाले कश्मीरी पण्डित और मुस्लमान कसाब, धोवी आदि (जिनके पूर्वज कभी कश्मीर से आए थे) आपस में तो कश्मीरी ही बोलते हैं जबकि अन्य लोगों के साथ पुञ्छी। पुञ्छ नगर के मूल निवासी हिन्दु और सिक्ख (पुञ्छ नगर और गांवों में रहने वाले) केन्द्रीय पुञ्छी का ही व्यवहार करते हैं जबकि बाग और सुधनोती तहसीलों से आए हुए शरणार्थी, अपने घरों में तो अधिक तर पहाड़ी पुञ्छी में ही बात चीत करते हैं परन्तु अन्य लोगों के साथ केन्द्रीय पुञ्छी में इसी प्रकार पुञ्छ नगर में कुछ परिवार डोगरी और पंजाबी भी बोलते हैं। म्हेण्डर तथा इसके आस-पास रहने वाली दुल्ली, जाट आदि जातियां भी पुञ्छी का ही व्यवहार करती हैं। उत्तर की ओर छांजल, घोटा आदि स्थानों के रहने वाले मुसलमान गुज्जर गोजरी और हिन्दु (जो अब भारतीय प्रदेश में रहते हैं) पुञ्छी का ही व्यवहार करते हैं। इस प्रकार इस सारे प्रदेश में पुठोहारी के साथ पर्याप्त साम्यता रखने वाला चिमाली का स्थानीय रूप, पुञ्छी, गोजरी, कश्मीरी, पंजाबी और डोगरी बोलिआं बोली जाती हैं। सच-मुच यह प्रदेश बोलियों का अद्भुत संगम स्थल है। सम्भवत: इससे भविष्य में कोई नया रूप भी प्रगट हो सकता है।

डॉ० ग्रियर्सन के अनुसार चिमाली बोलने वालों की संख्या ७४१४०७ (तत्कालीन आंकड़ों के अनुसार) है जिसमें पुञ्छी बोलने वालों की संख्या २२००६६ है जबकि लेखक द्वारा संग्रहीत आंकड़ों के अनुसार पाकिस्तान बनने से पहले पुञ्छी बोलने वालों की संख्या इस प्रकार थी :—

१. बाग़ तहसील	=७४७९३
२. सुधनोती तहसील	=७५२१५
३. म्हेण्डर तहसील	=९००००
४. हवेली तहसील	=९००००
कुल	३३०००८

डोगरी और इससे सम्बन्धित बोलियां-चिमाली, पुञ्छी और पुठोहारी में डोगरी

ही एक भाषा है जिसका लिखित साहित्य उपलब्ध होता है। डा. ब्हूलर ने जम्मू-कश्मीर राज्य, राजपूताना, मध्य भारत आदि स्थानों का भ्रमण करने के बाद एक विस्तृत रिपोर्ट लिखी थी जो १८७७ में बम्बई से प्रकाशित हुई थी। उसमें उन्होंने लिखा था कि बहुत सी संस्कृत पुस्तकों का जिनमें गणित पुस्तक लीलावती भी एक है का डोगरी में अनुवाद मिलता है। एक 'जम्मू' नामक डोगरी पुस्तक भी १८२६ में प्रकाशित हुई थी। महाराजा रणबीर सिंह के राज्यकाल में भी डोगरी की बहुत सी पुस्तकों का प्रकाशन हुआ था। महाराजा रणवीर सिंह ने तो डोगरी लिपि (जो टाकरी वर्ग के पुराने रूप के साथ सम्बन्ध रखती है। टाकरी के चम्बा-कुल्लु के ताम्र पट्टों से १०वीं और ११वीं शताब्दी के प्रमाण भी मिलते हैं) का भी सुधार करवाया था। खेद है कि महाराजा की मृत्यु के बाद इस कार्य की ओर उतना ध्यान नहीं दिया गया। अब प्रो० राम नाथ शास्त्री और उनके साथियों के अथक प्रयत्नों से डोगरी में विविध प्रकार के साहित्य का निर्माण हो रहा है।

प्रस्तुत लेख का विषय पुञ्छी और डोगरी का तुलनात्मक अध्ययन उपस्थित करना है। इनका तुलनात्मक अध्ययन व्याकरण सम्बन्धी विशेषताओं और भाषा वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर किया जा रहा है। किसी भी भाषा का भाषा-विज्ञान के आधार पर अध्ययन करने के लिए मुख्यत: इन चार अंगों को आधार मानना पड़ता है। ध्वनिसमूह, शब्दरचना, शब्दविन्यास और शब्दभण्डार।

(१) **ध्वनिसमूह (क)** :—डोगरी (इसकी बोलियों सहित) पुञ्छी और पञ्जाबी के ध्वनिसमूह समान हैं। घ, झ, ढ, ध और भ में समानरूप में उच्चारित होते हैं। इतना ही नहीं ये घोष महाप्राण ध्वनियां अघोष प्रयत्नतर-अल्पप्राण के रूप में भी उच्चारित की जाती हैं। जैसे क्ह, च्ह, ट्ह परन्तु इनका ऐसा उच्चारण तभी होता है जब ये ध्वनियां शब्द के आदि में प्रयुक्त हों तो। जैसे :—क्हर, ट्होल, प्हैण, च्हीर आदि। इनका इस प्रकार का उच्चारण करते समय एक विशेष प्रकार की सुर सुनाई पड़ती है।

(ख) डोगरी और केन्द्रीय पुञ्छी दोनों में बलहीन आदि स्वर का लोप हो जाता है, जबकि पहाड़ी पुञ्छी में इस नियम के कहीं-कहीं अपवाद भी मिलते हैं। जैसे :—

	डोगरी	केन्द्रीय पुञ्छी	पहाड़ी पुञ्छी
(अ)	पराध	पराध	पराध
(उ)	मेद	मेद	मेद

(ग) डोगरी और पुञ्छी के दोनों रूपों में सबल आदि स्वर का लोप नहीं होता है। जैसे अनजान, अदरक, आस्सरा आदि।

(घ) डोगरी के समान केन्द्रीय पुञ्छी में भी चतुर्थी और सप्तमी विभक्ति में 'ऐ' ध्वनि प्रयुक्त होती है जबकि पहाड़ी पुञ्छी में इस नियम के अपवाद मिलते हैं। जैसे :—

डोगरी	केन्द्रीय पुञ्छी	पहाड़ी पुञ्छी
आदमिए वास्ते	आदमिएं वास्ते	इनां आदमियां
घरै 'च	घरै 'च (बिच)	घरै 'च
कहन्दें पर (उपर)	कहन्दै उपर	कहन्दा 'र

(ङ) डोगरी और पुञ्छी दोनों में शब्द के अन्तिम अक्षर से प्रथम आ, ई, ऊ, ए, ऐ और ओ हो तो अन्तिम व्यंजन यद्यपि स्वरान्त ही लिखा जाता है पर उसका उच्चारण हलन्त अक्षर के समान होता है। जैसे :—

डोगरी	के. पुञ्छी	पहाड़ी पुञ्छी
मेख	मेख	मेख
सेक	सेक	सेक
आस	आस	आस
स्हैक	स्हैक	स्हैक

(च) डोगरी और पुञ्छी के दोनों रूपों में यदि 'अ' के आगे द्वित्व व्यञ्जन हो तो अन्तिम व्यंजन स्वरान्त हो जाता है। जैसे :—

डोगरी	के. पुञ्छी	पहाड़ी पुञ्छी
अक्ख	अक्ख	अक्ख
अक्कल	अक्कल	अक्कल

(२) शब्दरचना :

(क) संस्कृत के वे शब्द जो प्राकृत से तद्भव होकर आए थे वे डोगरी और पुञ्छी के दोनों रूपों में पञ्जाबी के समान तत्सम होकर ही आए हैं। जैसे :

संस्कृत	प्राकृत	डोगरी	केन्द्रीय पुञ्छी	पहाड़ी पुञ्छी	हिन्दी
कर्म	कम्म	कम्म	कम्म	कम्म	काम
सर्प	सप्प	सप्प	सप्प	सप्प	साँप
रक्त	रत्त	रत्त	रत्त	रत्ता	रक्त
कर्ण	कन्न	कन्न	कन्न	कन्न (कोंन्न)	कान

(ख) संस्कृत के 'र' प्रधान शब्दों के 'र' का हिन्दी में तो लोप हो जाता हैं जबकि डोगरी और पुञ्छी में नहीं होता है। जैसे :

संस्कत	डोगरी	के. पुञ्छी	प. पुञ्छी	हिन्दी
मित्र	मित्तर	मित्तर	मित्तर	मीत
सूत्र	सूत्तर	सूत्तर	सूत्तर	सूत
निद्रा	नीन्दर	नीन्दर	नीन्दर	नींद

(ग) डोगरी के समान पुञ्छी के दोनों रूपों में भी कई शब्दों के तद्भव रूपों में 'र' का निक्षेप हो जाता है। जैसे :

डोगरी	के. पुञ्छी	प. पुञ्छी	हिन्दी
परसीना	परसीना	परसीना	पसीना
त्रोड़ना	त्रोड़ना	त्रोड़ना	तोड़ना

(घ) डोगरी और पुञ्छी के दोनों रूपों में स्वराघाता के कारण शब्द के रूप में परिवर्तन हो जाता है और कभी-कभी अर्थ में भी। जैसे :

उच्च स्वराघात			मध्यस्वराघात			भिन्नस्वराघात		
डो.	के. पु.	प. पु.	डो.	के. पु.	प. पु.	डो.	के. पु.	प. पु.
बाह्	बाह्	बाह्	साण	साण	साण	चा	चा	चा
चाह्	चाह्	चाह्	स्हाण	स्हाण	स्हाण	नांह्	नांह्	नांह्

(ङ) उन संयुक्त शब्दों में जहां अनुस्वार परक वर्ण अघोष हो तो प्रथम वर्ण के अन्तिम 'अ' का उच्चारण डोगरी में 'ऐ' हो जाता है जबकि पुञ्छी के दोनों रूपों में 'अ' ही रहता है। जैसे :

डो.	के. पुञ्छी	प. पुञ्छी	हिन्दी
नैंन्त	नन्त	नन्त	अनन्त
जैन्तर (जन्तर)	जन्तर	जन्तर	यन्त्र
सैन्तु	सन्तु	सन्तु	सन्तु

(च) अनुस्वार परक वर्णों के आगे घोष वर्ण होने पर डोगरी और पुञ्छी के दोनों रूपों में आदि अक्षर ह्रस्व रहता है जबकि हिन्दी में अधिकतर दीर्घ ही रहता है। जैसे :

हिन्दी	डोगरी	के. पुञ्छी	प. पुञ्छी
पाञ्च	पञ्ज	पञ्ज	पञ्ज
खाण्ड	खण्ड	खण्ड	खण्ड
दान्त	दन्द	दन्द	दन्द

(छ) डोगरी और पुञ्छी दोनों में 'ह' ध्वनि से आरम्भ होने वाले शब्दों के 'ह' का लोप हो जाता है, परन्तु एक अतिरिक्त 'ह' का आगम भी हो जाता है जो लुप्त होने वाली 'ह' ध्वनि से अगली ध्वनि के साथ संयुक्त होकर उच्चारित होता है। लुप्त होने वाला 'ह' निर्बल अनुदात्त होता है। जैसे :

डोगरी	के. पुञ्छी	प. पुञ्छी	हिन्दी
म्हीरपुर	म्हीरपुर	म्हीरपुर	हसाना
पहाजत	पहाजत	पहाजत	हफाजत
म्हेशां	म्हेशां	म्हेशां	हमेशा

पहाड़ी पुञ्छी में हथौड़ा, हलवाई आदि शब्द इस नियम के अपवाद हैं।

(ज) डोगरी और पुञ्छी के दोनों रूपों में अवकण्ठित सुर पाया जाता है। ऐसे शब्दों के उच्चारण के समय गले में कुछ रुकावट जैसी आती हुई प्रतीत होती है। जैसे :

संस्कृत	डोगरी	के. पुञ्छी	प. पुञ्छी
हस्त	? अ॒थ	? अ॒थ	? अ॒थ

डा० सिद्धेश्वर वर्मा ने इन शब्दों में सुर की पहचान के लिए यह '? अ॒थ' चिह्न निश्चित किया है।

(झ) डोगरी और पुञ्छी के दोनों रूपों में शब्द की अन्तिम 'स' ध्वनि 'ह' में बदल जाती है। कई शब्दों के मध्य की 'स' ध्वनि भी 'ह' में परिणत हो जाती है। जैसे :

हिन्दी	डागरी	के. पुञ्छी	प. पुञ्छी
घास	घाह्	घाह्	घाह्
बीस	बाह्	बीह्	बीह्

(ञ) डोगरी और पुञ्छी के दोनों रूपों में और स्मध्वनि भी पाई जाती है, जो इन दो भेदों में मिलती है :

(१) 'ह' ध्वनि सूक्ष्मतम रूप।

(२) शब्द में पहले से ही विद्यमान ध्वनि का पूर्व निपात। जैसे :

	डोगरी	के. पुञ्छी	प. पुञ्छी
(१)	दोह्रा	दोह्रा	दोह्रा
(२)	बाह्रबीं	बाह्रबीं	बाह्रवीं

शब्द वि यास और शब्द भण्डार

(क) डोगरी और पुञ्छी के दोनों रूपों में शब्दों में द्वित्व की प्रवृत्ति बहुत अधिक पाई जाती है। जैसे :—

हिन्दी	डागरी	के० पुञ्छी	प. पुञ्छी
दश	दस्स	दस्स	दस्स
आठ	अट्ठ	अट्ठ	अट्ठ
जाट	जट्ट	जट्ट	जट्ट

(ख) डोगरी और पुञ्छी दोनों में कुछ देशज शब्द भी समान रूप से प्रयुक्त होते हैं। जैसे :—

डोगरी	के. पुञ्छी	प. पुञ्छी
बट्टा	बट्टा	बट्टा
ग्हुम्म	ग्हुम्म	ग्हुम्म
भड़ास	भड़ास	भड़ास

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि कुछ अपवादों को छोड़कर डोगरी और पुञ्छी के दोनों रूपों के ध्वनि समूह, शब्द रचना, शब्द विन्यास और शब्द भण्डार में पर्याप्त समानता पाई जाती है।

ध्वनि परिवर्तन के हमारे सामने कई उदाहरण आए हैं। कहीं ध्वनि निक्षेप (कणागिम) कहीं पर ध्वनि परिवर्तन, कहीं पर ध्वनिलोप, कहीं पर स्वराघात और कहीं संहति लोप आदि।

अब डोगरी और पुञ्छी की व्याकरण सम्बन्धी विशेषताओं के आधार पर तुलना की जाती है।

(१) डोगरी और पुञ्छी के दोनों रूपों के अधिकांश संज्ञा शब्दों में समानता जाती है। पहाड़ी पुञ्छी में कहीं-कहीं अपवाद भी मिलने हैं। जैसे :—

(क) संज्ञा :—

डोगरी	के. पु.	प. पु.	डो.	के. प्र.	प. पु.
बतख	बतक	बतक	कोरा	कोरा	कोरा
ग्रां	ग्रां	ग्रां	सुत्थन	सुत्थन	सुत्थन
ल्हैर	ल्हैर	ल्हैर	ल्हैर	ल्हैर	ल्हैर

(ख) भाव वाचक संज्ञाएं :—

दोस्ती	दोस्ती	दोस्ती	ज्वानी	ज्वानी	ज्वानी
पणत्याई	पणत्याई	पणत्याई	मूखंता	मूखंता	मूखंता

(२) डोगरी और पुञ्छी के दोनों रूपों में विशेषण वाचक शब्द भी एक समान ही बनते हैं। जैसे :—

(क) विशेषण से भाववाचक संज्ञाएं :—

डोगरी	के. पु.	प. पु.	डोगरी	के. पु.	प. पु.
बड्डा	बड्डा	बड्डा	सोह्ना	सोह्ना	सूह्णा
ढिल्ला	ढिल्ला	ढिल्ला	ह्विआ	ह्विआ	ह्विआ

(ख) विशेषण से भाव वाचक संज्ञाएं :—

डोगरी	के. पुञ्छा	प. पु	डोगरी	के. पु.	प. पु.
बड्याई	बड्याई	बड्याई	उचाई	उचाई	उचाई
लिसाई	लिसाई	लिसाई	भलाई	भलाई	भलाई

क्रिया और क्रियाओं की पावली :—

(क) डोगरी और पुञ्छी के दोनों रूपों में हिन्दी के समान धातु के अन्त में प्रधान प्रत्यय 'ना' या 'णा' लगता है जैसे :—

डोगरी	के. पु.	प. पु.	डोगरी	के. पु.	प. पु.
पीह्णा	पीह्णा	पीह्णा	घड़ना	घड़ना	घड़ना
जाना	जाना	गच्छना (ग्हेनां)	ढोणा	ढोणा	ढोणा
चलना	चलना	जुलना			

(ख) क्रियाओं के भाववाचक संज्ञाओं के रूप भी प्राय: एक समान बनते हैं। जैसे :—

डोगरी	के. पु.	प. पु.	डोगरी	के. पु.	प. पु.
घड़ाई	घड़ाई	घड़ाई	पुणाई	पुणाई	पुणाई
बाह्ई	बाह्ई	बाह्ई	छलाई	छिलाई	छिलाई

(ग) डोगरी और पुञ्छी के दोनों रूपों में क्रिया विशेषण कुछ अपवादों को छोड़ कर समान रूप से ही बनते हैं। जैसे :—

डोगरी	के. पुञ्छी	प. पुञ्छी
हुण्	हुण्	हुण्
कदें-कदें	कदें-कदें	कदें-कदें
इत्थें	इत्थें	इथें
खह्ल्ल	ब्हुन्न	ब्हुन्न

वचन और लिङ्ग के अनुसार डोगरी और पुञ्छी के दोनों रूपों में पुलिङ्ग से स्त्री लिङ्ग बनाने के लिए अधिकांश शब्दों के अन्त में 'ई' लगाई जाती है। कुछ शब्दों में 'नी' आगम भी हो जाता है। जैसे :—

डोगरी		के. पुञ्छी		प. पुञ्छी	
पुलिङ्ग	स्त्री लिङ्ग	पुलिङ्ग	स्त्री लिङ्ग	पुलिङ्ग	स्त्री लिङ्ग
घोड़ा	घोड़ी	घोड़ा	घोड़ी	घोड़ा	घोड़ी
मरद	जनानी	मरद	जनानी (कुड़ी)	मरद (मड़द)	कुड़ी
देर	दरानी	देर	दरानी	देर	दरानी

इस नियम के अपवाद इस प्रकार हैं :—

डोगरी		के. पुञ्छी		प. पुञ्छी	
पु.	स्त्री.	पु.	स्त्री.	पु.	स्त्री.
घोबी	धोबन	घोबी	घोबन	घोबी	घोबिआनी

(२) अ, ई, अन्त वाले शब्दों को डोगरी और पुञ्छी के दोनों रूपों में बहु-वचन बनाने के लिए शब्दों के अन्त में ए, ऐ, आं, और यां जोड़े जाते हैं। जैसे :—

डोगरी		के. पुञ्छी		प. पुञ्छी	
ए. व.	ब. व.	ए. व.	ब. व.	ए. व.	ब. व.
कुड़ी	कुड़ियां	कुड़ी	कुड़ीयां	कुड़ी	कुड़ीयां
मुण्डी	मुण्डियां	मुण्डी	मुण्डीयां	मुण्डी	मुण्डीयां
घोड़ा	घोड़ें	घोड़ा	घोड़े	घोड़ा	घोड़े

कारक :—

(क) डोगरी, केन्द्रीय पुञ्छी और पहाड़ी पुञ्छी में कर्तृवाचक परसर्ग 'ने' विकल्प से प्रयुक्त होता है। जैसे :—

कृष्ण पढ़ा रदा (डो. वर्तमान काल) (कृष्ण पढ़ रहा है)
कृष्ण (ने) अम्ब खादा (डो. भूतलाल) (कृष्ण ने आम खाया)
कृष्ण पढ़ना पिया (के. पु. वर्तमान काल)
कृष्ण अम्भ खादा (के. पु. भूतकाल)
कृष्ण पढ़ने स (पहाड़ी पुञ्छी वर्तमान काल)
कृष्ण अम्ब खादा सेस (प. पुञ्छी भतकाल)

(ख) कर्म वाचक परसर्ग के स्थान पर डोगरी में एकी, एगी, और एई,

प्रत्यय लगते हैं, केन्द्रीय पुच्छी में केवल एकी और एई, प्रत्यय लगते हैं। जबकि पहाड़ी पुच्छी में ऐ, ऐगी, और 'अ' प्रत्यय लगते हैं और कई स्थानों पर कोई प्रत्यय नहीं लगता है।

हिन्दी	डोगरी	के. पु.	प पु.
पुत्र को कहो	पुत्रैं गी (ई की) आख	पुत्रैं की आख	पुत्रैं आख

(ग) करण और अपादान परसर्ग के लिए डोगरी में 'कोला', 'थ्वां', 'शा', 'कश्शा' और 'परा' प्रत्युक्त होते हैं, केन्द्रीय पु. में 'कोलों' और 'थीं' जबकि पहाड़ी पु. में 'कोला' प्रयुक्त होता है। जैसे :—

डोगरी	के. पु.	प. पु.
उसदे थ्वां कम्म करवा (करण)	उसने कोलों ऐ कम्म करवा	उसने थीं (कोला) ऐ कम्म करवा

(घ) डोगरी में सम्प्रदान परसर्ग के लिए 'वास्ते', 'आस्ते' और 'गितैं' प्रयुक्त होते हैं, जबकि केन्द्रीय पुच्छी में केवल 'वास्ते' और पहाड़ी पुच्छी में 'ऐं', ऐआ प्रयोग में लाए जाते हैं। जैसे :—

डोगरी	के. पु.	प. पु,
बकरी चारने आस्ते गेआ (वास्ते)	बकरी चारने वास्ते गेआ	बकरी चारयागा

(ङ) सम्बन्ध कारक के बोधक परसर्ग डोगरी के दा, दे, दी पुच्छी के दोनों रूपों में क्रमश: ना, ने, नी में बदल जाते हैं। जैसे :—

हिन्दी	डोगरी	के. पु.	प, पु.
पुत्र का मित्र	पुत्रैं दा दोस्त	पुत्रैं ना दोस्त	पुत्र ना दोस्त

(च) अधिकरण कारक में र, पर, उप्पर, च, विच परसर्ग डोगरी में प्रयुक्त होते हैं, केन्द्रीय पुच्छी में वर, उप्पर, विच और पहाड़ी पुच्छी में र, विच इच परसर्ग प्रयुक्त होते हैं। जैसे :—

डोगरी	के. पु.	प. पु.
पुत्तरैं पर पत्थर पेआ	पुत्तरैं उप्पर पत्थर पिया	पुत्तरैं पत्थर पेआ
पढ़ने'च श्यार ऐ	पढ़ने विच श्यार ऐ	पढ़ने इच (विच) होश्यार

(२) सभी कारकों के उदाहरण—

(क) पुलिङ्ग :—

	डोगरी		के. पु.		प. पु.	
	ए. व.	ब. व.	ए. व.	ब. व.	ए. व.	ब. व.
कर्ता—पुत्तर (ने)		पुत्तर (पुतरैं)	पुत्तर (ने)	पुत्तर (पुत्तरैं)	पुत्र (ने)	पुत्तरैं (ने)
कर्म—पुत्तरे की (ई, गी)		पुत्तरैं की (ई. गी)	पुत्तरे की (ई)	पुत्तरैं की (ई)	पुत्तरैं (ई)	पुत्तरैं (ईं)
करण—पुत्तरेंशा (थ्वां कोला)		पुत्तरैं शा (थ्वां कोला)	पुत्तरैं कोलों	पुत्तरैं कोलों	पुत्तरैं कोला	पुत्तरैं कोला
सम्प्रदान—पुत्तरै आस्ते (वास्ते)		पुत्तरैं आस्ते (वास्ते)	पुत्तरै वास्ते	पुत्तरैं वास्ते	पुत्तरे या (पुत्तरे किया)	पुत्तरें आस्ते (पुत्तरें किया)
अपादान—पुत्तरेंशा (कश्शा, थ्वां कोला)		पुत्तरैं शा (कश्शा, कोला थ्वां)	पुत्तरै कोलों	पुत्तरैं कोलों	पुत्तरै कोला	पुत्तरैं कोला
सम्बन्ध—पुत्तरे दा, दी, दे		पुत्तरें दा, दे, दे	पुत्तरै ना, नी, ने	पुत्तरैं ना, नी, ने	पुत्तरै ना, नी, ने	पुत्तरैं ना, नीं, ने
अधिकारण—पुत्तरे वर (उप्पर, च, विच)		पुत्तरैं वर (उप्पर च विच)	पुत्तरे वर (विच, उप्पर	पुत्तरैं वर (विच उप्पर)	पुत्तरै र (विच (विच)	पुत्तरै र (विच, विच)

(१) डोगरी के वर्तमान कृदन्त रूप बनाने के लिए धातु के साथ दा, दे, दी लगते हैं और साथ ही आकारन्त धातु को विकल्प से ह्रस्व भी हो जाता है। केन्द्रीय पुञ्छी में इनके स्थान पर क्रमशः ना, ने, नी हो जाते हैं, परन्तु डोगरी के समान धातु के ह्रस्व नहीं होता है। पहाड़ी पुञ्छी के रूप भी केन्द्रीय पुञ्छी के समान ही बनते हैं। जैसे :—

डोगरी		के. पु.		प. पु	
पुलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	पुलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	पुलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
जा—जन्दा	जन्दी	जाना	जानी	जुलना	जुलनी
खा—खन्दा	खन्दी	खाना	खानी	खाना	खानी

(२) डोगरी के भूत कृदन्त रूप बनाने के लिए धातु के साथ एआ, ता

और दा प्रत्यय लगाए जाते हैं। केन्द्रीय पुञ्छी में भी धातुओं के साथ ये प्रत्यय ही लगाए जाते हैं जबकि पहाड़ी पुञ्छी में 'ऐस', 'एस' भी लगते हैं। जैसे—

डो.	के. पु.	प. पुञ्छी
खा—खादा—खादी।	खादा—खादी।	खादा—खादी।
खादे—खादियां।	खादे—खादीआं।	खादे—खादीआं

कृदन्त—[१] भूतकालिक कृदन्त रूपों में डोगरी का दा, दे, दी पुञ्छी के दोनों रूपों में क्रमशः ना, ने, नी में बदल जाते हैं। जैसे—

डोगरी	के. पुञ्छी	प. पुञ्छी
सीता दा टल्ला	सीता ना कपड़ा	सीता ना कपड़ा

[२] पूर्वकालिक कृदन्त रूपों में डोगरी में धातु के साथ 'ईए' 'इए' और कहीं-कहीं 'करी' भी जुड़ जाता है, केन्द्रीय पुञ्छी में 'के' और 'कै' प्रत्यय लगते हैं, जबकि पहाड़ी पुञ्छी में केवल 'ई' ही लगाई जाती है। जैसे—

धातु—डोगरी	के. पुञ्छी	प. पुञ्छी	हिन्दी
लिख्—लिखिए	लिखी कै(के)	लिखी (कै)	लिखकर
रो—रोईए (करी)	रोई कै (के)	रोई (कै)	रोकर

[३] डोगरी के अपूर्ण भूतकालिक कृदन्त रूपों में 'दाहा', 'दे हे','दी ही' के स्थान पर केन्द्रीय पुञ्छी में 'नासा', 'नेसे', 'नीसी', 'सन' और पहाड़ी पुञ्छी में 'नासेस', 'नासिया', 'नासिउ' और 'नासिए' प्रत्यय लगते हैं। जैसे—

डोगरी	केन्द्रीय पुञ्छी	पहाड़ी पुञ्छी
में दौड़ा रदा हा	मैं दौड़ना सा	मैं दौड़ना लगाना से स (मैं दौड़ना से स)

[४] डोगरी और केन्द्रीय पुञ्छी के सहायक क्रिया के रूपों में आ, ऐ, न समान रूप से प्रयुक्त होते हैं जबकि पहाड़ी पुञ्छी में दा, देस, दी और दीआं प्रयुक्त होते हैं। जैसे :—

डोगरी	के. पुंछी	प. पुंछी
उस्सी केह् कम्म ऐ ?	उस्सी कैह् कम्म ऐ ?	उस्सी कैह् कम्म दा ?
ओह् केह् करारदा ?	ओह् कैह् करना ?	(क) ओह् कैह् करना स ?
		(ख) ओह् कैह् करना
		(उदात्तस्वर)

(५) डोगरी, केन्द्रीय पुञ्छी और पहाड़ी पुञ्छी की 'आना' और 'जाना' क्रियाओं के रूप भूतकाल, वर्तमान काल तथा भविष्यत काल में क्रमशः इस प्रकार बनते हैं। जैसे—

डो.	के. पु.	प. पुंछी
(भू० का०) आया, गेआ।	आया, गेया।	आ, गा।
(वर्त० का०) आवारदा, जारदा।	आवना पेया, जावना पेया।	ऐना, ग्हेना
(भवि० का०) आऊग, जाग।	आवसी, जासी।	ऐसी, ग्हेसी

(६) [क] डोगरी की भविष्यत् कालिक क्रिया बनाने के लिए धातु के साथ ग, ङ्ण्, गा, गे प्रत्यय लगाए जाते हैं, केन्द्रीय पुञ्छी में सी, सण् (सें, सों, सां) और पहाड़ी पुञ्छी में एसी, ऐले एलियां लगाए जाते हैं। जैसे—

डोगरी	के. पुञ्छी	प. पुञ्छी
जाग, जाङ्ण	जासी, जासण्	ग्हेसी, ग्हेले
		(ग्हेलिआं)

[ख] केन्द्रीय पुञ्छी की सम्भाव्य भविष्य सूचक क्रिया बनाने के लिए धातु के साथ 'सीग्', सीगा, 'सण् गे', 'सणगिआं', पहाड़ीपुञ्छी में 'एसी', 'एले', 'एलियां' प्रत्यय लगाए जाते हैं जबकि डोगरी में 'ग्', 'ङ्ण्' प्रत्यय ही लगते हैं। जैसे—

डोगरी	के० पुञ्छी	प० पुञ्छी
जाग, जाङ्ण	जासीगा, जासनगे	ग्हेसी, ग्हेले
	जासणगियां	ग्हेलिआं

[७] डोगरी और पुञ्छी के दोनों रूपों में कुछ क्रियारूप 'उ' से आरम्भ होते हैं। जैसे—

डोगरी	के. पुच्छी	प. पुच्छी
कुथैं	कुथैं	कुथैं
उत्थैं	उत्थैं	उथैं

(८) प्रश्नवाचक सर्वनाम रूपों में हिन्दी में क्या और कौन के स्थान पर डोगरी में 'केह्' और 'कुण्' (काण) केन्द्रीय और पहाड़ी पुंछी में 'कैह्' और 'कुण' हो जाते हैं। जैसे :

डोगरी	के. पुच्छी	प. पुच्छी
केह् आखारना ? (आखदे ओ)	कैह आखने ओ ?	कैह आखनेया ? (कैह् आखनाई)

(९) डोगरी में संज्ञाओं के कुछ सम्बन्धवाचक रूपों के अन्त में लगने वाली ए (े) मात्रा पुच्छी के दोनों रूपों में ऐ (ै) में बदल जाती हैं, परन्तु पहाड़ी पुच्छी में इसके अपवाद भी मिलते हैं। जैसे :

डोगरी	के. पुच्छी	प. पुच्छी
राम चन्दे दी ध्हैण	राम चन्दै नी ध्हैण	राम चन्दै नी ध्हैण

(१०) डोगरी और पुच्छी के दोनों रूपों में कई संज्ञा रूपों और क्रिया के अन्तिम 'अ' को दीर्घ ऊ (ू) हो जाता है। जैसे :

डोगरी	के. पुच्छी	प पुच्छी
ध्हैणूं दी चिट्ठी	ध्हैणूं नी चिट्ठी	ध्हैणूं नी चिट्ठी
सस्सूगी पुच्छ	सस्सू की पुच्छ	सस्सू ई (की) पुच्छ

यह मात्रा परिवर्तन भूतकालिक कृदन्त के संज्ञा रूपों में भी हो जाता है। जैसे :

डोगरी	के. पुच्छी	प. पुच्छी
ए कम्म कियां कित्ता ?	ऐ कम्म कियां कीता ?	ऐ कम्म कुइयां कीता ?

(११) डोगरी के सामान्यभूत के रूप बनाने के लिए धातु के साथ 'या', 'आया' और 'ए' प्रत्यय लगाए जाते हैं, केन्द्रीय पुच्छी में 'आ', 'आया', 'या' और 'ई' तथा पहाड़ी पुच्छी में 'एआ', 'स', 'सेस', 'ऐस', 'एस', 'स' और 'आ' प्रत्यय लगाए जाते हैं।

डोगरी	के. पुच्छी	प. पुच्छी
उन छोड़ेआ	उस छोड़ी दित्ता	उनी छोड़ेआ (उन्नी छोड़ेंआ)
मैं जारदा हा	मैं जाना पैआ सां	मैं रहेगा सेस

(१२) भविष्यत् कालिक डोगरी रूपों में ग, ङ्, गा प्रत्यय लगते हैं, केन्द्रीय पुच्छी में सी और पहाड़ी पुच्छी में सैस प्रत्यय लगते हैं। जैसे :

डोगरी	के. पच्छी	प. पुच्छी
ओह् मारग्	ओह् मारसी	ओह् मारसैस

(१३) आज्ञा सूचक क्रिया के साथ डोगरी में एआं, आं, आयां, आं, ओ और अ प्रत्यय लगते हैं, केन्द्रीय पुच्छी में आ, आं और अ एवं पहाड़ी पुच्छी में आऐस और आं प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं। जैसे :

डोगरी	के. पुच्छी	प. पुच्छी
समझा (समझाआं)	समझा	समझ एस
करां	करां	करां

अब नीचे विभिन्न कालों के विविध भेदों के अनुसार क्रिया रूपों के उदाहरण दिए जाते हैं :—

कर्तृवाच्य सकर्मक धातु

(१) *सामान्य भतकाल*

पुलिङ्ग :	डोगरी		के. पुच्छी		प. पुच्छी	
	ए. व.	ब. व.	ए. व.	ब. व.	ए. व.	ब. व.
उ. पु.—में गेआ	अस गे	मैं गेआ	अस गे	में गेस	अंस गेयां (अस)	
स्त्री. :						
उ. पु.—में गेई	अस गैइआं	मैं गेई	अस गेईआं	मैं गेई	अंस गेइआं (अस)	

(२) आसन्न भूतकाल

पुंलिग :—

	डोगरी		के. पुञ्छी		प. पुञ्छी	
	ए. व.	ब. व.	ए. व.	ब. व.	ए. व.	ब. व.
उ. पु.	में गेआ उठी	अस गे उठी	मैं गेआ	अस गे	मैं गैआसे सठी	अंस गेसै आंठी

स्त्री. :—

उ. पु.	में गेई उठी	अस गेइआं उठी	मैं गेईआं	अस गेईआ	मैं गेई ठी	अंस गेईआं ठीआं

(३) अपूर्ण भूतकाल

पुंलिग :—

	ए. व.	ब. व.	ए. व.	ब. व.	ए. व.	ब. व.
उ. पु.	में जारदा हा (आउं	अस जार दे हे	मैं जाना पे आसां	अस जाने पेसां	मैं ग्हेणासेस	अस ग्हेणे सेआं

स्त्री. :—

उ. पु.	में जारदी ही (आऊं)	अस जार- दियां हां	मैं जाणी पेईसां [जाणी लगीनीसां]	अस जाणी- आ पेइआं सां	मैं जुलनी सिऊस	अंस जुलनी- आं सिहां [१] जुलनी आंसिनां अंस ग्हेणी आं सिआं

(४) पूर्ण भूतकाल

पुंलिग :—

	ए. व.	ब. व.	ए. व.	ब. व.	ए. व.	ब. व.
उ. पु.	में गेआ हां	अस गेहे	मैं गे आ सां	अस गे सां	मैं गासेंस	अस गे से आं

स्त्री. :—

उ. पु.	में गेई ही	अस गेईआं हां [हिआं]	मैं गेई सां	अस गेईआं सां	मैं गेई सि उस	अंस गेईआं सिआं

(५) सन्दिग्ध भूत जाल

पुंलिग :—

	ए. व.	ब. व.	ए. व.	ब. व.	ए. व.	ब. व.
उ. पु.	में गेआ ओह्ड	अस गेओह्गे	मैं गेआ ओह्सां	अस गे ओह् सां	मैं गेआ ओह्सां	अस गे ओहसां

स्त्री. :—

उ. पु.	में गेई ओह्ड	अस गेईआ ओह्गिआं	मैं गेई ओह्सां	अस गेईआं ओह्सां	मैं गेई ओह्सां	अंस गेईआं ओह्सां

(६) हेतु हेतु मद्भूतकाल

पुंलिग :—

	ए. व.	ब. व.	ए. व.	ब. व.	ए. व.	ब. व.
उ. पु,	जे में जंदा	जे अस जंदे	जे मैं जाना	जे अस जाने	जे मैं जुलना	जे अंस जुलने

स्त्रा. :—

उ. पु.	जे में जंदी	जे अस जँदिआं	जे मैं जानी	जे अस जानिआं	जे मैं जुलनी	जे अंस जुलनिआं

(१) सामान्य वर्तमानकाल

पुंलिग :—

	उ. पु. डोगरी		के. पुञ्छी		पहाड़ी पुञ्छी	
	ए. ब.	ब. व.	ए. व.	ब. व.	ए. व.	ब. व.
	में रोज जन्ना	अस रोज जन्ने	मैं रोज जाना	अस रोज जाने आं	मैं रोज ग्हेना	अंस रोज ग्हेनेआं

स्त्री. :—

उ. पु.	में रोज जन्नी	अस रोज जन्निआं	मैं रोज जानी	अस रोज जानीआं	मैं रोज ग्हेनी	अंस रोज ग्हेनेआं

(२) अपूर्ण वर्तमान काल

पुंलिग :—

उ. पु.	में जारना	अस जारने	मैं जाना पियां	अस जाने पियां	मैं जुलनै स	अंस जुलने आं

स्त्री. .—

	ए. व.	ब. व.	ए. व.	ब. व.	ए. व.	ब. व.
उ. पु.	में जारनी	अस जारनि-आं	मैं जानी पेईआं	अस जानी-आं	मैं जुलनी अस	अंस जुलनी आं

(३) सन्दिग्ध वर्तमानकाल

पुलिंग :—

उ. पु.	में जारदा ओह्ड	अस जारदे ओह्गे	मैं जाना ओह्सां	अस जाने ओह्सां	मैं जुलना ओह्सां	अंस जुलने ओह्नेआं

स्त्री. :—

उ. पु.	में जारदी ओह्गी	अस जारदि-आं ओह्गिया	मैं जानी ओह्सां	अस जानी-आं ओह्सां	मैं जुलनी ओह्सां	अंस जुलनी-आं हुणिआं

(१) सामान्य भविष्यत् काल

पुलिंग :—

उ. पु.	में जाङ्	अस जागे	मैं जासां	अस जासां [जासांगा]	मैं ग्हेसां	अंस ग्हेणे आं

स्त्री :—

उ. पु.	में जाङ्	अस जागि-आं	मैं जासां	अस जासां [जासां गिआं]	मैं ग्हेसां	अंस ग्हेणीआं

(२) सम्भाव्य भविष्यत् काल

पुलिंग :—

उ. पु.	में जां	अस जाचै	मैं जां	अस जां	मैं गच्छां	अंस गच्छां

स्त्री. :—

उ. पु	में जां	अस जाचै	मैं जां	अस जां	मैं गच्छां	अंस गच्छां [अस]

(३) हेतु हेतुमद भविष्यत्काल

पुलिंग :—

उ. पु.	जे में जाङ्	जे अस जागे	जे में जां	जे अस जां	जे मैं गेस्	जे अंस गे

स्त्री. :—

	ए. व.	ब. व.	ए. व.	ब. व.	ए. व.	ब. व.
उ. पु.	जे में जाङ्	जे अस जागीआं	जे मैं जां	जे अस जां	जे मैं गेई अस	जे अंस गेईआं

आज्ञा :—

इसमें केवल मध्यम पुरुष के ही रूप बनते हैं।

म. पु.	जा। जाओ।	जा। जाओ।	गच्छ। गच्छा।
	आ। आओ।	आ। आओ।	आ। आओ।

इस प्रकार डोगरी और पुञ्छी के दोनों रूपों की व्याकरण सम्बन्धी विशेषताओं के आधार पर तुलना करने पर भी हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि पुञ्छी का पूर्वी रूप [जिसे इस लेख में केन्द्रीय पुञ्छी नाम दिया गया है] डोगरी के साथ पर्याप्त साम्यता रखता है, जबकि पश्चिमी रूप [पहाड़ी पुञ्छी] लहंदी के उत्तर पूर्वी रूप पुठोहारी से अधिक प्रभावित है। इसके अतिरिक्त इन दोनों पर पंजाबी का भी प्रभाव है। इसलिए पुञ्छी के इन दोनों रूपों के सही स्रोत का पता लगाने के लिए निष्पक्ष रूप से कार्य करने की आवश्यकता है।

अब डोगरी और पुञ्छी के दोनों रूपों के कुछ नमूने दिए जाते हैं ;—

[१] वाक्य

	डोगरी	के. पूञ्छी	प. पुञ्छी
[१]	माऊ घी टोरी। [माऊ ने घीऊ गी टोरेआ]	माऊ घी टोरी [माऊ घीऊ की टोरैआ]	माऊ घी टोरी [माऊ घीऊ टोरैआ]

[२] **गद्यांश** :—[क] [डोगरी]

"अस सारे बुत्त जन बनेदे कदैं हरीश वक्खी ते कदैं खन्ने वक्खी दिक्खै दे हे।"

[ख] **पुञ्छी** :—

"अस सारे बुत्त बनी कै कदैं हरीश ने पासै ते कदैं खन्ने पासे तकमे सां।"

[ग] प. पुञ्छी :—

"अस सारे वुत्त बनी कदै हरीशै लै देक्खने सैआं, कदै खन्ने देक्खने सैआं।"

[३] लोकगीत [डोगरी]

बिच गुफा दे बैठी ऐ दुर्गा, जागे जोत नराली।
उच्चे भौण माता लबदे, काले पर्वतें वाली॥

केन्द्रीय पुञ्छी

चन्न म्हाड़ा चढेआ जाई लत्था पलन्दरी।
बाहरीं बल्दी इसनी ते दाग़ सीने अन्दरीं।

आधुनिक कविता [डोगरी]

"कदें ते म्हाड़े गराएँ चा लंग, नमें जुगा होई जागा तू दंग।
धामां ते मेले ते कुड्ड ते छिज्जां, ढोलकी घुंगरू बांसरी जंग।"

केन्द्रीय पुञ्छी

नेक कौम गुज्जर करदेनी उजर, गुज्जर वे उजर ताब्यादार बख्शी
पावें कुज होई गुज्जर दुद्द देसी कड्ड के म्हज ते गांदी धार बख्शी।

पहाड़ी पुञ्छी

तूड़े नाल नेहुं लाई, म्हाड़ा बुरा हाल होईऐ।
अत्थरूआं की डोली-डोली नीर सारा मुकिआ।
तकी-तकी थक्की गेईआं राह तूड़ा ढक्की वाला।
चन्न म्हाड़ा चढ़ि आन, केह्ड़े पासे लुकिआ।

मुहावरे :—

डोगरी :—

(१) चोरें दा माल डांगे दे गज्ज ।

(२) चोरे दा मन काह्‌ला ।

केन्द्रीय पुञ्छी :—

(१) चोरें ने कपड़े डांगें न गज ।

(२) चोरें कोला पण्ड काह्‌ली ।

परमानन्द की हिन्दी-कविता

राजकुमारी कौल

कश्मीर एक अहिन्दी प्रांत है, किन्तु इस का यह तात्पर्य नहीं कि कश्मीर के लोग आज या आज से पहले कभी हिन्दी से अनभिज्ञ रहे हैं। वास्तव में अपनी मातृ-भाषा कश्मीरी के बाद एक साधारण कश्मीरी हिन्दी अथवा उसके एक रूप उर्दू में ही बोलने पढ़ने लिखने में सुविधा का अनुभव करता है। कश्मीर में हिन्दी और उर्दू के प्रायः उतने ही कवि अथवा लेखक मिलते हैं, जितने कश्मीरी के। इतना ही नहीं 'महजूर', जिन्दा कौल, नादिम, 'राही', 'कामिल' आदि प्रसिद्ध आधुनिक कश्मीरी कवियों ने भी प्रारम्भिक कविताएं हिन्दी अथवा उर्दू में ही लिखी हैं।

उन्नीसवीं शती में भी कश्मीर में ऐसी स्थिति वर्तमान थी। उस शताब्दी के महान कवि परमानन्द ने भी हिन्दी में कविता की है। परमानन्द का वास्तविक नाम पंडित नन्दराम था और उनका जन्म मटन मार्तण्ड के निकट 'सीर' गांव में हुआ था। उनकी शिक्षा फारसी की साधारण जानकारी तक ही सीमित थी। पिता की मृत्यु के पश्चात नन्द राम मटन के पटवारी नियुक्त हुए और जीवन पर्यन्त पटवारी रहे।

कश्मीर के तीर्थों में मटन अपना एक विशेष महत्त्व रखता है। यहां वर्ष में कई बार मेले लगते हैं और कश्मीर के अतिरिक्त पंजाब आदि से भी लोग उन में सम्मिलित होने के लिए आते हैं। इसके साथ ही यहां सिखों का बहुत बड़ा गुरुद्वारा है। और फिर मटन अमरनाथ यात्रा के मार्ग में पड़ता है जिससे हजारों साधु महात्माओं का गुजर यहां से होता है। इस प्रकार मटन में रहने के कारण नन्दराम को साधु-सतों

के सत्संग का लाभ प्राप्त हुआ जिससे उनका भक्त और कवि जाग उठा और वे नंदराम से 'परमानन्द' बन गये।

परमानन्द ने कश्मीरी में 'राधा-स्वयंवर', 'सुदामा-चरित्र', 'शिव-लगन' आदि लम्बी कविताओं के अतिरिक्त अनेक फुटकल गीत लीखे हैं। कश्मीरी के साथ-साथ उन्होंने हिन्दी में भी कविताएं लिखी हैं। इन हिन्दी कविताओं में परमानन्द कश्मीरी कविताओं की भांति ऊंचे नहीं उठ सके हैं। किन्तु फिर भी इनका अपना महत्व है।

एक हिन्दी कविता के कुछ अंश नीचे दिये जाते हैं :—

श्याम मुख सन्मुख दिखावे।
मेरा मन कैसा सुख पावे।

देह द्वारका, मन है कृष्ण जी।
भोग इच्छा अठ पट-रानी।
वख-वख लख घर बिछावे।
मेरा मन कैसा सुख पावे।

जनमे का जमुना पार तरे।
सत्संग गगं अश्नान करे।
न-आवन तीर्थ तन न्हावे।
मेरा मन कैसा सुख पावे।

इन कविताओं में व्याकरण की त्रुटियों, मुहावरों के अशुद्ध प्रयोग, शब्दों की तोड़ मरोड़, पंजाबी तथा कश्मीरी-पन के दर्शन होते हैं। इसका कारण यही है कि परमानन्द को हिन्दी का केवल सुना सुनाया ज्ञान था। मटन में उन्होंने साधु सन्तों के मुख से हिन्दी के भक्त कवियों की रचनाएं सुनी थीं। तुलसी कृत रामायण सुनने की बात को उन्होंने स्वयं स्वीकारा है और ऐसा लगता है कि उन्होंने सूरदास के कुछ पद भी सुने थे। सूर का एक पद इस प्रकार आरम्भ होता है।

"करि न्यारी हरि आपुनि गया।
नहीं आधीन तेरे बाबा के, नहिं तुम हमरे नाथ गुसैया।"

यही बात लगभग इन्हीं शब्दों में परमानन्द ने भी कही है :—

परमानन्द (सन् १७९१ से सन् १८७९ तक)
[कवि के शिष्य मूर्तिगर द्वारा अन्कित चित्र की रेखानुकृति]

गुम्पा की कला

गैया कड़ो प्रभु न्यारी अरे।
असी क्यों राखूं बछ त्वाड़े अरे।
ना नंद सेहर का चाकर हम।
ना तुम्हरे साथ प्यारे अरे।

परमानन्द साधु महात्माओं के सत्संग में भाग लेने के अतिरिक्त गुरुद्वारे में ग्रंथ साहब का पाठ भी सुना करते थे। इसी कारण उन की हिन्दी जिसे उन्होंने 'भाखा' कहा है, पंजाबी-मिश्रित है। कहीं-कहीं उन की कविता में एक पंक्ति हिन्दी और दूसरी पंजाबी की पाई जाती है। जैसे :—

"श्याम कलेवर, श्याम कलेजा।
असनू कद इन्साफ आंवदा है।"

पंजाबीपन के अतिरिक्त किसी-किसी स्थान पर फारसी एवं कश्मीरी का पुट भी मिलता है। जैसे :—

"बाजीगर ने बाजी कर के।
जिगर हमारा पारा लूको।"

यहां बाजी, बाजीगर और जिगर फारसी तथा लूको (है, लोगों) कश्मीरी के शब्द हैं।

परमानन्द की हिन्दी कविता अधिकतर उपदेश-मूलक है। उन्होंने भी अन्य सन्तों की भांति मन की शुचिता एवं आन्तरिक साधना पर बल दिया है। वे कहते हैं :—

चाहचो देखन सुदर्शन का।
मन का दीवा बाल॥

इसके अतिरिक्त उन्होंने श्री कृष्ण जी के जीवन के विभिन्न पक्षों को भी अपनी कविता का विषय बनाया है। ये कविताएं भाव और भाषा की दृष्टि से अपेक्षाकृत सुन्दर बन पड़ी हैं। एक ऐसी कविता का कुछ अंश यहां दिया जाता है :

"भिक्षा मांगन संवांग बनाओ।
आयो शिव जी गोकुल में॥

ना कुछ समझा, ना कुछ बोला ।
खोला नहीं नेत्र विशाल ।।
मौनी होके धोनी तपायो । आयो० ।।

अर्न्तयामी स्वामी देखा ।
भीतर बाहर पूर्ण मय ।।
बाल कृष्ण मुख उससे छुपायो । आयो० ।।

यह बालक है जसोदा माई ।
त्रेजुग का जो स्वामी है ।
जिस को बनायो उसको बन आयो । आयो० ।।

किन्तु इस कृष्ण लीला में भी जहां कवि ने अन्योक्तियों एवं रूपकों का बहुत अधिक प्रयोग किया है, वहां कविता में नीरसता आ गई है ।

जैसे :

"मन कंसा तन मथुरा होंदा ।
कृष्ण आत्मा, हृदि गोकुल रहंदा ।
नारद विवेक सच सनिया देंदा ।"..... इत्यादि

इन हिन्दी कविताओं का छन्द-विधान सर्वथा कश्मीरी है । कश्मीरी गीतों में प्राय: प्रथम पंक्ति के अन्तिम शब्द की तुक दूसरी पंक्ति के प्रथम शब्द से मिलती है । इस प्रकार गीत में निराला माधुर्य आ जाता है । उदाहरणार्थ देखिये :

सनकादिक यही आखा जनका ।
मन का दीवा वाल ।।

या

"भिक्षा मागन स्वांग बनावों ।
आयो शिव जी गोकल में ।।

परमानन्द की कविता में अनुप्रास, उपमा, श्लेष आदि अलंकारों के भी दर्शन होते हैं । किन्तु यमक के प्रति उनका विशेष मोह दीखता है । देखिये :

"जिसको बनायो, उस का बनआयो"
अथवा

मृग तृष्णा मुख जग को भाखा।
जग में जलना जल ना राखा॥

अन्त में एक बात का स्पष्टीकरण वांछित है। परमानन्द की हिन्दी कविता भाव पक्ष अथवा कला-पक्ष की दृष्टि से उच्चकोटि की नहीं कही जा सकती। इस कवि का महत्व तो उसकी कश्मीरी कविता के कारण ही है। फिर भी यहां इस बात की ओर इंगित किया गया कि उन्नीसवीं शताब्दी में भी कश्मीर में हिन्दी लेखन का प्रयास हुआ था। आज भी कश्मीर के कई लेखकों एवं कवियों ने हिन्दी को ही आत्माभिव्यक्ति का माध्यम चुना है।

नोट :—लेख में उद्धृत पद्यांशों का पाठ मास्टर जिन्दा कौल की पुस्तक "परमानन्द सूक्ति सार" पर आधारित है, जो बहुत हद तक प्रामाणिक है।

गीत

मोहन निराश

नहीं किसी दरपन को तोड़ो नज़रों से
यहां किसी सूरत पर बाल न पड़ने दो
नहीं किसी दीपक को मरघट पर बालो
नहीं किसी देहरी की मांग उजड़ने दो

थके दिनों को दे दो छांह चिनारों की
रातों की आंखों से सपने मिलने दो
ऊषा के माथे पर बिंदिया सजने दो
संध्या के हाथों में मेंहदी खिलने दो

हर लहरी को दे दो प्यार किनारों का
भंवर के हाथों को मोती पाने दो
हर धारा को दे दो बंधन बाहों का
मँझधारों को पार उतर अब जाने दो

चन्दा का वह दाग़ हृदय का धो डालो
तारों को आंखों का प्यार होने दो
बांह पकड़ कर ले आओ तुम मावस को
पूनम-भांई में तन उसको धोने दो

नहीं किसी की डोली को तुम लुटने दो
नहीं किसी भी काजल को तुम झरने दो
नहीं किसी चूड़ी को चकना चूर करो
नहीं किसी पायल को यहां उतरने दो

गागरियों को छेड़ो छलकाते जाओ
नहीं किसी को भ पर प्यासा मरने दो
विषकन्याओं को कह दो वे दूर रहें
मधुबाला के हाथों प्याला भरने दो

लद्दाख की गुम्पाएं

सूरज सराफ

लद्दाख को गुम्पाओं की धरती भी कहा जाता है। लद्दाखी लोगों के जीवन पर इन गुम्पाओं का अत्यधिक प्रभाव है। वास्तव में वह ही लद्दाखी जीवन का केन्द्र हैं।

लद्दाख की प्रत्येक दिशा में छोटी अथवा बड़ी गुम्पाएं दृष्टिगोचर होंगी किन्तु महत्त्व तो बड़ी बड़ी गुम्पाओं का ही है, छोटी गुम्पाएं तो उनकी शाखाएं होती हैं।

इन गुम्पाओं के भवन अति भव्य होते हैं और पर्वतीय ढलवानों पर बने होते हैं। ये गुम्पाएं शताब्दियों से लद्दाखी लोगों के धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन के केन्द्र के रूप में चली आ रही हैं।

लद्दाख के किसी भी गांव में प्रविष्ट होने से पूर्व एक लम्बी पंक्ति घोर्टनों की मिलेगी तथा एक मणि दीवार भी होगी। वस्तुतः यह दो वस्तुएं इस बात की चिन्ह हैं कि इनके आगे कोई मानवीय बस्ती आने वाली है।

लद्दाख में १६ बड़ी गुम्पाएं हैं जिनमें कुछ महत्त्वपूर्ण गुम्पाओं के नाम हैं :-- हेमस, निमान, सपितू, थिक्सा, सस्पोल, रिजोंग, चमरे, टकटक, शंकाट, फियांग आदि।

बताया जाता है कि लद्दाख की ४०,००० बौद्ध आबादी में १५०० लामा हैं, जिनमें ८० स्त्री लामा भी समाविष्ट हैं, इनको चमोस कहा जाता है। सिर्फ हेमस तथा चमरे की दो गुम्पाओं में ही, जो कि एक ही कुशक के आधीन हैं पांच सौ लामा हैं।

भारत के कुछ अन्य कबीलों की भांति जैसे नागा, आदिवासी, गद्दी इत्यादि, लद्दाख के लोग भी नृत्य गान के बड़े रसिक हैं और यह लोग वर्ष भर बहुत से मेले मनाते रहते हैं। इन मेलों में जी भर कर नृत्य गान की अपनी उमंग को पूर्ण कर लेते हैं। क्योंकि लद्दाख के बौद्ध लोगों का जीवन अधिकांशत: धार्मिक ही है इसलिए इनके मेले भी धार्मिक रंग में रंगे हैं। यह लोग मेले इत्यादि उत्सव अपनी गुम्पाओं में ही मनाते हैं।

किसी गुम्पा में मेला मनाने का अभिप्राय यह भी होता है कि वहां के देवी देवताओं तथा धन सम्पदा के दर्शन लोगों को कराए जाएं तथा उस गुम्पा के सब शिष्य उस अवसर पर वहाँ एकत्रित हों। जब इतने लोग एक स्थान पर एकत्रित हों तो अवश्य ही वहां किसी प्रकार का मेला लग जाता है। ये मेले विभिन्न गुम्पाओं में वर्ष के भिन्न भिन्न भागों में मनाये जाते हैं।

लद्दाख की सर्वाधिक प्रसिद्ध तथा समृद्ध गुम्पा हेमस है जो कि लद्दाख की राजधानी लेह से २५ मील दूर है। लद्दाख का सबसे बड़ा मेला हेमस गुम्पा में ही लगता है जिसे देखने के लिए बाहर से भी पर्यटक आते हैं। यह बात शायद इसलिए भी है कि यह मेला ग्रीष्मकाल में लगता है और शेष सब गुम्पाओं के मेले हेमन्तर्तु में लगते हैं और शीतकाल में लद्दाख पहुंचना कोई सरल बात नहीं।

हेमस गुम्पा का मेला प्रतिवर्ष बुद्ध तिथि पत्र के पांचवें मास की दसवीं तिथि को (जो कि साधारणत: जुलाई मास में होता है) पद्म सम्भव के जन्म दिवस के उपलक्ष्य में मनाया जाता है। पद्म सम्भव को महात्मा बुद्ध का अवतार माना जाता है। वह लामावाद का प्रवर्तक था। दुष्टात्माओं का प्रभाव दूर करने के लिए भी यह मेला मनाया जाता है।

मेले के प्रथम दिन प्रात: खेल तमाशे होते हैं तथा उसके पश्चात गुम्पा के मुख्य द्वार के ऊपर एक बहुत बड़ा रेशमी आवरण लटकाया जाता है जिस पर लाल बुद्ध साम्प्रदाय के एक बड़े महात्मा द्रुकपरिनपोशे का चित्र बना होता है। सब लोग इस चित्र के सन्मुख नाचते हैं और प्रार्थनाएं करते हैं। तब गुम्पा का प्रधान लामा सबसे उच्च स्थान पर बैठ जाता है तथा अन्य लामा उससे निचले स्थानों पर अपने-अपने दर्जे के अनुसार बैठ जाते हैं। फिर कई लामा सब के मध्य नाना प्रकार के मुखौटे पहन कर नाचते हैं तब कुछ और लामा भी विभिन्न देवी देवताओं के रूप धारण करके उनके साथ नृत्य में सम्मिलित हो जाते हैं। इन सब लामाओं ने बड़े उज्ज्वल एवं भड़कीले वस्त्र पहने होते हैं। कुछ देर विश्राम करने के उपरांत यह लोग एक शैतान

की मूर्ति के सामने नाचते हैं जो कि माखन तथा आटे के मिश्रण से बनाई जाती है। फिर इस प्रतिमा को एक तलवार द्वारा खण्ड खण्ड कर दिया जाता है और लामा बड़े आनन्द तथा आवेश से नाचने लगते हैं। इस प्रकार मेले का प्रथम दिवस समाप्त होता है और गुम्पा के बड़े द्वार पर जो आवरण लटका होता है वह हटा लिया जाता है।

दूसरे दिन एक नवीन आच्छादन द्वार पर लटकाया जाता है जिस पर एक प्राचीन मुख्य लामा का चित्र अंकित होता है जिसने हेमस गुम्पा को उसकी वर्तमान स्थिति में परिवर्तित किया था। इस दिन भी प्रार्थना की जाती है तथा मुखौटे, जिन पर विभिन्न आकृतियां बनी होती हैं, पहन कर लामा नृत्य करते हैं। इस प्रकार लद्दाख का यह सबसे बड़ा मेला तीसरे दिन सवेरे समाप्त हो जाता है।

कश्मीरी संगीत

पृथ्वीनाथ रैणा

कश्मीर के संगीत की अजस्र धारा प्रधानतया छः उपधाराओं में प्रवाहित होती रही है। (१) लीला या नात, (२) रो'फ या रो'ब, (३) वनवुन, (४) न्यन्द-ब'थ, (५) छकं'र, (६) सूफियाना कलाम्।

१. **लीला या नात**—'लीला' का अर्थ है—'क्रीडा' या 'चरित्र' इसका सम्बन्ध प्रायः हिन्दुओं के देवी-देवताओं की स्तुतियों या स्तोत्रों, उनकी क्रीडाओं अर्थात् चरित्रों, वेदांत, वैराग्य आदि विषयों से होता है। लीला का गान प्रायः मन्दिरों या देवस्थानों में भगवान् की पूजा-अर्चणा के रूप में होता है। इसके अतिरिक्त यह गान शुभ अवसरों, महोत्सवों एवं विवाहोत्सवों पर भी होता है। 'लीला' का गायन प्रायः सामूहिक रूप से घड़े, मंजीर, करताल आदि की लय-ताल के साथ और विवाहोत्सवों पर विशेषकर मिट्टी के लम्बूतरे मुंह वाले ढोल 'तुम्बखनारी' पर किया जाता है। संस्कृतमिश्रित कश्मीरी भाषा में प्रायः 'लीला' की रचना होती है। कश्मीरी 'लीला' के प्रमुख रचनाकार कविवर परमानन्द, लक्ष्मणदास, कृष्णदास, हरिहर कौल, गोविन्द कौल, मानजी अत्तार, श्री ठाकुरजू मनवटी, मा० जिंदा कौल आदि हैं।

कश्मीरी हिन्दुओं की लीला की तरह कश्मीरी मुसलमान अल्लाह की प्रशंसा एवं प्रार्थना में नात या नाते-शरीफ गाया करते हैं। 'नात' का अर्थ है ही दुआ या प्रार्थना। इसमें इस्लामी-धर्मावतारों एवं धर्मानुयायियों के चरित्रों, उनके पुण्य-कर्मों पर प्रकाश डाला गया होता है। 'लीला की तरह ही पुण्य पर्वों पर भी नातें गाई जाती हैं। कश्मीरी में 'नातें' प्रायः नाजिम स'ब, शमस फ़क़ीर, महमूद गामी, रसूलमीर, हकानी की मिलती हैं।

रो'फ या रो'व— कश्मीरी लोक-संगीत का दूसरा रूप हमें रो'फ में मिलता है। यह एक सामूहिक गान होता है। इसे विशेषकर विवाह के शुभावसरों एवं धार्मिक पर्वों पर मुसलमान स्त्रियां दो वर्गों में बंटकर, गाती हैं। इसमें कोई वाद्ययन्त्र नहीं बजता। पहले वर्ग की स्त्रियां आगे और पीछे एक सुन्दर लचक के साथ हिलने का क्रम जारी रखती हुई 'रो'फ' का पहले एक चरण गाती हैं। फिर सामने वाला दूसरा वर्ग उसी ढंग एवं भाव से उसे दुहराता है। 'रो'फ' के गीत प्रायः मुस्लिम धर्मावतारों के आदर्श जीवन तथा उनके आदर्श पुण्य-कर्मों, इसके अतिरिक्त प्रेमी प्रेमिका के विषय की चर्चा से सम्बन्ध रखते हैं। ये गीत बहुधा फारसी-मिश्रित कश्मीरी भाषा में मिलते हैं।

(३) **वन'वुन**—कश्मीरी लोक-संगीत के अन्तर्गत 'वन'वुन' का एक विशिष्ट स्थान है। इसे हिन्दू और मुसलमान नारियां प्रायः शुभ एवं विवाहोत्सवों पर गाती हैं। दोनों प्रकार के 'वन'वून' में भाषा-भेद अवश्य पाया जाता है। हिन्दू-नारियों के 'वन'वुन' की रचना संस्कृत-मिश्रित कश्मीरी और मुस्लिम-नारियों के 'वन'वुन' की रचना फारसी-मिश्रित कश्मीरी में होती है। हिन्दू-नारियां एक स्थान पर मंडलाकार बैठकर और दो श्रेणियों में विभक्त होकर 'रो'फ' की भांति 'वन'वुन' का प्रत्येक चरण गाती हैं। शुभोत्सव या विवाह के अवसरों पर प्रारम्भिक धार्मिक संस्कार से लेकर अन्तिम धार्मिक संस्कार तक के गेय पद दोनों धर्मानुयायियों के 'वन'वुन' के बन्धे हुए होते हैं। मुस्लिम महिलाएं अवसर के अनुरूप कभी बैठकर या कभी खड़ी होकर दो वर्गों में बंटकर 'वन'वुन' का गान करती हुई दूल्हा-दुल्हन की आरती उतारती हैं।

हिन्दू-महिलाओं द्वारा गाये जाने वाले 'वन'वुन' का एक स्वरबद्ध नमूना निम्नांकित है :

[स्वर] स-नुस—, रस नुस—, नुस-नु—, नुस-— नु

(बोल) शोक लंऽ ऽ, कऽ रिथ्—, वनऽवुन् ऽ, ह्यो तुय-ये

(स्वर) स-नुस—, रस नुस—, नुस—नु—, स नुस—नु

[बोल] शुऽ भऽ ऽ, फऽ लऽ ऽ द्युतु ऽ ये ऽ, मा जिऽ ऽ, भ वाऽ ऽ ने

[स्वर] स नुस नुस नु नु-, रस नुस—, स नुस—सनु नु

बोल] क निऽ ऽ दान् को रुय्, माऽ ऽल्य् ऽ, ना राऽ ऽ येऽ न य

[स्वर] स नस—न्—, स—न्—, रस नस-नस—, नस—, न् न्—

[बोल] भ् मिऽ ऽ दा न्, रोऽ टुय् ऽ, माऽ ऽ ल्य् ऽ नाऽ ऽ, राऽ ऽ, ये णय

अब मुसलमान-महिलाओं द्वारा गाये जाने वाले 'वन'वुन' का भी एक स्वरबद्ध नमूना देखिए :—

[स्वर] स र ग़ म म ग़ र स ऩ् स स स, स र ग़ म म ग़ र स ऩ् स — —,
[बोल] विस मिल्लाह् क ऽ रिथ् ह्य मय वन वो ऽ नय्, सा हि बन् अं ऽ जाम् ओऽ नु ये ऽऽ
[स्वर] स र ग़ म म ग़ र स ऩ स— —, स स र ग़ र ग़ र स ऩ स—स,

[बोल] सा हि वनू अं ऽ जाम् ओ ऽ नु ये ऽऽ, रु रु म चेन्य् जा ऽ विल्य् सुम सेज द्रा इ ये,
[स्वर] स र ग़ म म ग़ र स ऩ् स — —, स र ग़ मम ग़ र स ऩ स — —,

[बोल] फ़ा तम् सैव आ इ ये अ थ डाल ने ऽऽ, फ़ा तम् सैव आ इ ये अ थ डाल ने ऽऽ,

[४] **न्यन्द ब'थ**—खलिहानों में कृषिकार्य, बुवाई, निराई या लुनाई के समय कृषक-दल 'न्यन्द-व'थ' का सामूहिक गान करते हैं। 'न्यन्द' का अर्थ है—'निराई' और 'ब'थ' का अर्थ है—'गीत'। ये गीत प्राय: परमार्थ-सम्बन्धी हुआ करते हैं और इनमें प्रेमी-प्रेमिका के संयोग-वियोग, नखशिख आदि का वर्णन होता है। इसमें कृषक-अच्छी खेती के लिए अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को प्रकट करते हैं। इस प्रकार के गीत की अगवाई एक व्यक्ति करता है और बाद में अन्य उसका साथ देते हैं। इन गीतों में कोई वाद्य नहीं बजता। इस प्रकार के गीतों के गाने का ढंग अलग और निराला होता है।

(५) **छकं'र या छकरी**—जब खलिहानों में धान पक रहा होता है और उससे किंचित् निश्चिंत होकर, अहर्निशि, उसके रक्षार्थ, कृषकवृन्द दीर्घावकाश की अवधि को गुजारने के लिए अपने खलिहानों के निकटवर्ती सीमा-स्थल पर एकत्रित होकर सामूहिक रूप से कश्मीरी सारण [छोटी सारंगी] की बारीक स्वरलहरी, घड़े, घुँघरू और तुम्बकनारी [मिट्टी के लम्बूतरे ढोल] की लय-ताल के साथ छकरी गाते हैं। छकरी के अन्तर्गत कश्मीरी गजलें हुआ करती हैं, जिनमें प्रेमी-प्रेमिका के प्रेमालाप, नखशिख, संयोग वियोग आदि का वर्णन होता है। छकरी की ग़ज़लों की रचना फारसी-

मिश्रत कश्मीरी में हुआ करती है । छकरी में एक प्रमुख गायक होता है जो ग़ज़ल के प्रत्येक पद का नेतृत्व करता है, दूसरे सहगायक प्रत्येक चरण को दुहराते हैं । हर चरणांत पर वाद्य-यन्त्रों पर लय को बढ़ाते हुए उस ग़ज़ल की केवल धुन विभिन्न लयकारियों में बजाकर उसका एक अंश पूर्ण किया जाता है । इसी क्रम से ग़ज़ल के अन्यांश भी गाये-बजाये जाते हैं ।

आजकल कश्मीर में छकरी बहुत प्रचलित और लोकप्रिय हो गई है । भिन्न-भिन्न धुनों में इसे बड़ी रुचि के साथ गाया जाता है । कश्मीर के प्रमुख मुसलमान कवियों में हब्बाख़ातून, रसूलमीर, वाहबरवार, न्याम'स'ब, हक़ानी, महमूद गामी, शमस् फ़क़ीर, आज़ाद, महजूर आदि हैं तथा वर्तमान कवियों की कविताएं भी छकरी के रूप में गाई जाती हैं । छकरी के पद्यमय आख्यान भी गाये जाते हैं, जिन में प्रमुख 'ग्रीस्य्-कूर', 'गुलरेज़', 'क़ाल्ल-कूर', 'ज़िम्य्-मज़ूर', 'ह' र—तोत्त', 'हीमाल-ना'ग्य्राय', 'यूसुफ़नाम', आदि हैं ।

आजकल भारतीय संगीत की देखादेखी कश्मीरी ग़ज़लों को ग़ज़ल और कव्वाली के ढंग से भी गाया जाता है ।

[६] **सूफ़ियाना कलाम्**—'सूफ़ियाना' का अर्थ है 'सूफ़ियों द्वारा विरचित,' 'कलाम्' अर्थात् 'वाणी' । सूफ़ियों द्वारा रची वाणी का श्रीगणेश अरब में मुस्लिम संगीत के नाम से हुआ था । मुस्लिम संगीत का इतिहास पर्शियन और अरबी संगीत का मिश्रित इतिहास है, जोकि एक-दूसरे में घुल-मिलकर एक हो गया है ।

जब मुसलमान भारत आये, तो भारतीय संगीत को उन्होंने निजी ढांचे में ढालना शुरू किया था । अरब का वैसे अपना कोई विशुद्ध संगीत नहीं था । अरब के गानों में अरबी संगीत का माधुर्य, रोमन और यूनानी संगीत की छाप तथा भारतीय संगीत का पुट था । इस प्रकार सूफ़ियाना संगीत का आधार अरबी या मुस्लिम संगीत है । कश्मीरी सूफ़ियों ने कश्मीरी भाषा में गीत रचना करके इसे अरबी संगीत की विभिन्न धुनों या रागों में बांध लिया । अरब के प्रमुख दार्शनिक और विद्वान् संगीतज्ञों में अलफ़राबी और इब्नसिन्या थे, जिन्होंने संगीत पर बहुत उत्कृष्ट निबन्ध लिखे हैं। उनके कथनानुसार अरब संगीत में बारह राग या मक़ाम हैं— १] राह्वी, (२) हुसेनाई, (३) रस्त, (४) हिजाज़, (५) बुज़ुर्ग (६) कोचक, (७) ईराक़, (८) नवाब (९) सफ़हा, (१०) उशाशाक, (११) जंगला, (१२) बसालिका । इन राग रागनियों में से प्रत्येक दो शोभाओं में बंटी हुई है । रात और दिन के चौबीस घंटों के लिए चौबीस राग रागनीयां बनीं । इसके अतिरिक्त दूसरी ध्वनियों के मिल जाने तथा भारतीय संगीत की राग रागनियों के आधार पर भी नये राग या मुकाम बने, जैसे :—

इस्फ़ान, दुगाह, पंजगाह, कूहीं, भैरवी, झंझोटी, कानरा, बहार, कल्याण, रवमाज, तिलंग, आसावरी, बिहाग, जैजैवन्ती, पूर्वी, सेगाह आदि । इस प्रकार ४८ या ५१ धुनों या घोषों का अब तक पता चला है। भारतीय नामवाले मक़ाम या रागों के स्वरों से ये बहुत कम मिलते-जुलते हैं । इन सूफ़ियाना मक़ामों या रागों का गायन समयाधीन होता है और साथ ही सत्रह तालों या लयों का भी पता चला है ।

सूफ़ियाना संगीत की विभिन्न धुनों में बन्धी हुई जो कवितायें रची गई हैं, वे अध्यात्म भावना का पुट लिए हुए हैं । यार, आशिक (प्रेमी) या माशूक (प्रेमिका) के सम्बोधनों के द्वारा सूफ़ी-संत उस अखिलेश्वर या एकेश्वर की अर्चणा करते आये हैं। कुछ गीतों में हिन्दी साहित्य के रीति-ग्रन्थों का स्पष्ट प्रभाव पड़ा हुआ मिलता है। सूफ़ियाना-संगीत में फारसी-गीतों की भी रचना हुई है। भारतीय संगीत में प्रचलित तराना, जो अरब की देन है, कि रचना भी विभिन्न मकामों में मिलती है। सूफ़ियाना में बजने वाली तालों में दुयक्का, रवानी, नीमदौर, मुखम्मस, तुर्की,-जरब, चम्पन्दाज़ आदि प्रमुख तालें प्रसिद्ध हैं। कश्मीरी सूफ़ियाना के कश्मीरी गीत अरिन्यमाल, हब्बाखातून, महमूद गामी, नुंदऋषि आदि से विरचित मिलते हैं। अधिक काव्य-सामग्री अज्ञात कवियों की उपलब्ध होती है, जो बहुत प्राचीन है। आधुनिक कवि सूफ़ी-संगीतज्ञों द्वारा स्वरबद्ध रचनाओं को ही दुहराते हैं। गुरु-शिष्य (उस्ताद-शागिर्द) परम्परा का आदर करने के कारण सूफ़ियाना संगीत की गायकी का अपरिमित घेरा है। प्रायः सूफ़ियाना-संगीतकार तत्सम्बन्धी व्याकरण या शास्त्र से अपरिचित हैं, और इसके गाने वालों की संख्या भी अत्यल्प है ।

कश्मीरी सूफ़ियाना संगीत में तीन प्रकार के साज बजते हैं—सन्तूर, सेतार या मधम तथा काश्मीरी साज।

सन्तूर—यह छाज की शक्ल का होता है, और प्रायः शहतत की लकड़ी से बनाया जाता है। इसे एक पीठिका पर बजाते समय रख दिया जाता है। इसकी सौ तारें होती हैं, जो डेढ़ सप्तकों में राग या मकाम के स्वरों की आवश्यकतानुसार मिलाई जाती हैं। इस में पीतल और लोहे की तारें लगी होती हैं। प्रायः मध्य सप्तक के स्वरों को निकालने के लिये पीतल की तारें तथा तार सप्तक (टीप) के स्वरों के लिए लोहे की तारें लगी हुई होती हैं। इसे पक्षी के पंजे की शक्ल के लकड़ीके बने हुए औजार 'कलम' से हाथों द्वारा तारों पर प्रहार करके बजाया जाता है ।

सेतार या मधम—भारतीय संगीत में प्रयुक्त होने वाली सितार से आकार-प्रकार में यह बहुत छोटी होती है । इसमें धागे के पर्दे लगे होते हैं, जिन्हें मकाम के

स्वरों की आवश्यकतानुसार ऊपर-नीचे किया जाता है। इसमें पीतल की सात तारें लगी होती हैं। इसे मिजराब से बजाया जाता है।

कश्मीरी या क'शुर साज—कश्मीरी साज़ सूफियाना संगीत में अपना पृथक एवं महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह लकड़ी का बना होता है। इसकी डांड के नीचे एक छोटा सा तूम्बा होता है, जिस पर चमड़ा मढ़ा हुआ होता है। इसकी पतली, सुडौल और गोल डांड होती है, जिस पर धागे के पर्दे लगे हुए होते हैं। इसमें तांत की दो तारें होती हैं, जिन्हें डांड की चोटी पर कसा जाता है। इसके सिरे पर पीछे की तरफ से भी एक और तुम्बा लगा होता है। इसे गज़ से बजाया जाता है।

ताल और लय की संगति के लिए 'सूफियाना मौसीकी' में प्रायः 'वसूले' (ढोलक की शक्लवाले चर्मवाद्य) का प्रयोग किया जाता है। आजकल 'वसूले' के स्थान पर अधिकतर 'दुकारा' (तबले) की ही संगत की जाती है।

कश्मीरी सूफियाना में सर्वप्रथम वाद्यों पर बजाये गये स्वरालाप द्वारा अभीष्ट राग या मकाम की अवतारणा की जाती है। इसके बाद गीत की स्थाई नेता के निर्देशन के अनुसार प्रारम्भ की जाती है। जब इसके कई आवर्तन होते हैं तो इसे 'सम' पर समाप्त किया जाता है, तभी सभी साज़ों पर इस गाई हुई स्थाई की धुन बजाई जाती है, और बड़ी मद्धिम आवाज़ में मुंह से भी उसके साथ शब्दोच्चारण किया जाता है। स्थाई की धुन को 'सम' पर समाप्त करके गीत के दूसरे चरण 'अंतरे' को सामूहिक रूप से पहले चरण 'स्थाई' की तरह से गाया जाता है, फिर 'सम' पर समाप्त करके केवल वादन-द्वारा इसकी पूर्ति की जाती है और धीमी आवाज़ में 'अंतरे' को दुहराया जाता है। 'सूफ़ियाना' में इस दुहराने की क्रिया को "जवाब' कहते हैं। इस प्रकार गीत के अन्य भागों में भी पूर्ववत् क्रम चलता है। भारतीय संगीत के 'ध्रुपद-गायन' की तरह कुछ सीमा तक स्वर प्रधान और इसमें गाये जाने वाले गीत भाव-प्रधान होते हैं।

हाफिजायों का नग़मा—कुछ काल पूर्व यहां शुभावसरों, विशेष कर विवाहोत्सवों पर 'हाफिज़ाओं का नगमा' कराया जाता था। यह हाफिज़ाएं अधिकतर वेश्याएं हुआ करती थीं, परन्तु वे वेश्यावृत्ति को ज्यादा न अपनाकर गायनोपजीवी ही हुआ करती थीं। इनके साथ अपने साज़िन्दे हुआ करते थे और हाफ़िज़ाएं गायन के साथ नृत्य पेश करके अभिनय भी करके दिखलाती थीं। यह नगमा प्रायः रात को समां बांध देता था।

बच्च नग़म—कालांतर में 'हाफ़िज़ाओं के नग़में का स्थान 'बच्च-नग़मा' ने लिया

इसमें हाफ़िज़ाओं के स्थान पर बिना दाढ़ी-मूंछ के एक लड़का जामा पहनकर गाता और नाचता है। उसके सिर पर स्त्रियों-जैसे लम्बे बाल होते हैं जो उसके मुख पर बिखरे हुए होते है। कभी 'बच्चा' कृत्रिम बालों का भी प्रयोग करता है। शुभ एवं मंगलमय मजलिसों में वह बहरूप धारण करके गायन के साथ लोक-नृत्य और अभिनय भी पेश करता है। इस प्रकार रातभर स्वाँग रच कर अपने नृत्यमय गायन की कला से वह उपस्थित दर्शकों एवं श्रोताओं का मनोरंजन करता है।

'भाण्ड–जशन'—कश्मीर में विवाह-संस्कार के सम्पन्न होने पर जब दुल्हन घर आ जाती है तो इस प्रकार के शुभ अवसरों पर एक और प्रकार की गायक-मण्डली घर के आंगन में बिना आज्ञा प्रविष्ट हो जाती है। इस मण्डलीका नेतृत्व खुमरे करते हैं। जिन्हें 'सिद् गूर्य' कहते हैं। ये 'सिद्गूर्य' कश्मीरी मुस्लिम वेशभूषा में ही प्रायः सुसज्जित हुआ करते हैं। वे काश्मीरी 'फेरन्' लहरिया शिलवार, पैरों में जूता पहने हुए, सिर पर 'कसाना' (एक प्रकार का टोप, जिस में ढंग से रोपे के सिरों-वाली सूइयां लगी होती है) उसके ऊपर ओढनी (पूचू) कारों में 'कनवाजी' (कुण्डलों का गुच्छा), बाहों में रोपे के बन्ध–'मच्छबन्ध' हाथों में रोपे ही की दर्जनों अँगूठियां, आंखों में सुरमा डाले, सिर पर मांग सजाये, घर में प्रवेश पाते ही बधाई का अभिनन्दन-गान शुरू कर देते हैं। उनके साजिन्दे वसूलों, छोटे नगाड़ों, रबाब तथा मंजीरों के साथ अपनी मण्डली के नेताओं की संगत करते हैं। बधाई देकर और लड़के वालों से पैसे लेकर वे चले जाते हैं।

कश्मीरी लोक—संगीत की एक विशेष झलक भाण्डजशन में मिलती है। भाण्डों की छोटी छोटी टोलियां हिन्दू-मुसलमानों के धार्मिक महोत्सवों, जैसे––ईद, शिवरात्रि, (हेरथ), नववर्ष (नव-वरिह) आदि पर घर घर बधाई देते हुए घूमते–फिरते हुए मिलते हैं। वे नगाड़े या वसूले तथा स्वरनय (शहनाई) पर कश्मीरी लोक धुनें बजाते हैं, कभी गाते भी हैं।

कश्मीरी लोक-संगीत की अन्य झलकियां 'लडीशाह', 'तम्बूर्य-नग़मा', 'हक्क-ब'थ', आदि में भी मिलती है।

'लडीशाह'—लडीशाह एक ताल-वाद्य है, जो लोहे के एक पतले सींकचे की शक्ल का होता है। इसके ऊपर-नीचे के दोनों सिरे मोड़ लिए गए होते है। इस सींकचे में लोहे के दर्जनों छल्ले डाले गए होते हैं। लडीशाह वादक इस वाद्य के एक सिरे को बायीं बगल में ओर दूसरे सिरे को बायें हाथ से पकड़ कर दायें हाथ से छल्लों पर एक विशेष लय में छेड़ने का क्रम जारी रखते हुए, विभिन्न लोक-कथाओं को एक अनोखे ढंग और धुन में गाता है। 'लडीशाह' बजाने

के कारण इसके बजाने वाले को ही 'लडीशाह' कहते हैं। यह प्राचीन चारणों की स्मृति को सजीव करता है।

'तम्बूर्य-नग़मा'—यह गायकों और वादकों की एक विशेष मण्डली है। शुभोत्सवों पर उपस्थित होकर रबाबों, मंजीरों और वसूलों के साथ यह मण्डली अपने अनोखे ढंग का गान गाती है। इस मण्डली के नेता या मुखिया को 'वोस्त' अर्थात् उस्ताद कहते हैं।

'हक्क-ब' थ'—कश्मीर में नदियों में सामान या बोझ में लदी हुई बड़ी बड़ी नावों, जैसे हाउस बोट, डूंगे, वाहच या सड़कों पर रेड़ों अथवा गाड़ियों को खेंचते हुए हांजी या मजदूर लोग साहस और शक्ति के लिए 'हक्क-ब'थ' बड़े ओजस्वी एवं स्फूर्ति-दायक शब्दों में गाते हैं। हांजियों या मजदूरों की पार्टी में से कुछ लोग गीत का नेतृत्व करते हैं और शेष हुकांर भरते हुए उन शब्दों को दुहराते हैं। 'याइल्लाही-इलल्लाह' (या) 'हिल्ला-हिल्ला' (या) 'इल्लाह-इल्लाह' अथवा 'यापीर दस्तगीर' आदि इसके विषय हैं जो उत्साह वर्धक एवं स्फूर्तिदायक होते हैं।

दो लघु कविताएं

'सतीक्ष्ण कुमार आनन्दम्'

सावन के घन

पसीने में लत-पथ जन-जीवन
आतप सहते धरती के कण
देख रहे हैं क्षण-क्षण उन्मन
सावन के घन
सावन के घन !

अभिशप्त

लिये प्याला अभिशापों का
आधि भार सहता
जीवन का भूखा
जीने की चाह में
निकला घर से
भटक रहा है
कहीं मिलेगा क्या
पल भर जीवन ?

बुलबुल

पं० नीलकण्ठ शर्मा

नेरुँहा फुटरिथ कफ़स बो डालुँ दिमहा मंज गुलन
सपनियुय आज़ाद यखदम श्यहलिह्यम दिलकुय जलन ।

डाफ़ुँ दिमहा साफ सब्जारन प्यठुँय अरमान छुम
बोसुँदिमहा सुंबुलन तय मसवलन आरहवलन ।

छावुँहा अछिपोश लछिबोद्य यथ दिलस शरन्येरिह्यम
बुय नज़ारा डेशिया नीलोफ़रन हुन्द मंज़ डलन ।

कम्य सितम गरुँनुय बुँथोवुस बंद करिथ अन्दर कफ़स
हाय गछिमा सोंथ नीरिथ दा'ब्यम्या'नी कर बलन ?

क्या बरोसह छुम बुँरोज़ा जिन्दुँ ब्ययिता नवबहार
बुथ वुछा गिलिटूरिनुँय तय विर्यक्यम्यन यम्बुरज़लन ।

काश आस्या सनुँ दिलुँच हरकथ म्य तोतातामथ बहाल
बाग़ बादामन हुन्दी बरजस्तुँ यमि वखतय पवलन ।

छुम गुलन हुन्द रंग व्योन व्योन याद यलि पेवान मे
पारुँ पारह छुम गछा'नी वारुँ आह दिलुँचन छलन ।

बिम्ब-प्रतिबिम्ब
हिंदी अनुवाद

बुलबुल

—पृथ्वीनाथ मधुप

तोड़ दूं पिंजरा प्रसूनों में रमूं, मैं चाहता—
और हो स्वच्छन्द, चुकता ताप उर में जो पला ।

स्वच्छ हरियाली पे सुस्ता लूँ यही तो साध है
जटामासी "‡मसवलों" औ पाटलों को चूमता ।

भोगता "‡अछिपोश" शतशत पूरती हिय-कामना
मानसों में कुमुदिनी का मंजु दृश्य मैं देखता ।

किस अदय ने मुझे पिंजरे में भला बंदी किया
हा ! कहीं माधव न लौटे कब चुके फिर वेदना ।

क्या भरोसा जी सकूं जो आयेगी अब नवबहार
नर्गिसें "‡गिलटूर्य" "‡विर्यक्यम्य" देखपाऊं क्या पता ।

काश ! क्या चलती रहेंगी धड़कनें उस वक्त तक
बौर बादामों के पायेंगे कि जब तक पूर्णता ।

रंग अनेकों किस्म के फूलों के आते याद जब—
खण्ड दिलके और होते टूक कितने हाय ! हा !

‡कश्मीर में पाये जाने वाले पुष्पों के नाम ।

स्यानि शोकुक नार आलम ज़ालि गोट गछि आसमान
मुनफयिल गछि नारिनमरूद अदुॅव्यप्या मंज़ मंनकलन ।

वातु कर तथ बागुॅसुॅय मंज़ यथ हमेशह नवबहार
योत गछिथ यचकांलुॅकी बेमार यखदम छी बलन ।

नीलुॅकण्ठा ! करह्यमथ फुटरिथ कफ़स आजाद बन
हमचु बुलबुल कर चुॅजल परवाज़ तयकर मंज़िलन ।

आग दिल की जग जला देगी कि धुंधलायेगा नभ
शर्म से नमरूदाग्नि पायेगी कुण्ड में समा ?

बाग में जिस चिर बहारें, कब पहुंच पाऊं वहां
पहुंच कर जिसमें कि रोगी स्वस्थ होते सर्वदा ।

जीवटी बन फोड़ पिंजरा मुक्त हो रे "नीलकण्ठ"!
मंज़िलें कर पार, बुलबुलकी तरह वर शीघ्रता ।

बिम्ब-प्रतिबिम्ब
डोगरी गीत

— यश शर्मा

संग्रां घिरेदेयां चित्त कमलाई जन्दा !
जिनें जाई परदेस न लाए डेरे
उने वैरियें दा चेता आई जन्दा —
होइएं बीतिएं गल्लें परानियें दा
कोई कोई चेता डंग लाई जन्दा !
घिरदेयां चित्त कमलाई जन्दा !

बस्स डांडें दै कुआं ते कुआं कियां
कोई दस्सी जाओ चन्न छुआं कियां ?
होई बांबरी सज्जनै ठग्गी लैती
दिनें रातीं इयै झूरा खाई जन्दा !
संग्रां घिरेदिया चित्त कमलाई जन्दा !

मन रोऐ इसी पतयाना कियां ?
छन्दे, दस्सी जायों समझाना कियां ?
नैन डुल्ली पौन्दे जदूं उत्त धारा
कोई गीत बछोड़े दा गाई जन्दा !
संग्रां घिरदेयां चित्त कमलाई जन्दा ।

बिम्ब-प्रतिबिम्ब
हिन्दी - अनुवाद

अनु० : विजय सुमन

सांझ घिरते ही (मेरा) चित्त मुरझाने लगता है
जिसने परदेश में जाकर डेरा लगा लिया है
उस बैरी की सुधि सताने लगती है।
बीती हुई बातों की याद
मेरे हृदय को कचोटने लगती है
सांझ घिरते ही (मेरा) चित्त मुरझाने लगता है।

निर्मम लोगों के बस में (रहते हुए) मैं अपनी व्यथा कैसे कहूँ ?
कोई बताये कि मैं (अपना) चांद कैसे प्राप्त करूं ?
मुझ बावरी को, (मेरे ही प्रियतम) ने ठग लिया है
यही सन्ताप रात दिन मुझे निगल रहा है।
सांझ घिरते ही (मेरा) चित्त मुरझाने लगता है।

(अपने) रोते हुए हृदय को कैसे सांत्वना दूं?
(तुम्हारे) पांव छूती हूँ, मुझे इतना बता जाओ।

घरें आलें हा छप्पियै रोई लैन्नी,
दाग तेरे बछोड़े दे धोई लैन्नी,
औं चेत दे दियें गी बाली लैन्नी
जेल्लै चौंन्नें पासे न्हेरा छाई जन्दा !
संजां घिरदेयां चित कमलाई जन्दा ?

मेरे नयन बरस पड़ते हैं जब सामनी पर्वतमाला पर
कोई विरह की रागिनी छेड़ जाता है ।
सांझ घिरते ही (मेरा) चित्त मुरझाने लगता है ।

घर वालों से छिप कर रो लेती हूँ
(इस तरह) वियोग के दाग धो लेती हूं ।
मैं (उस समय) तेरी स्मृति के दीपक जला लेती हू
जिस समय (मेरी) चारों ओर अन्धेरा छा जाता है
सांझ घिरते ही (मेरा) चित्त मुरझाने लगता है ।